अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष : 44, अंक : 7, 16-30 नवंबर 2020

"मैं महसूस करता हूं कि संविधान, साध्य (काम करने लायक) है, यह लचीला है पर साथ ही यह इतना मज़बूत भी है कि देश को शांति और युद्ध दोनों के समय जोड़ कर रख सके। वास्तव में मैं कह सकता हूँ कि अगर कभी कुछ गलत हुआ तो इसका कारण यह नही होगा कि हमारा संविधान खराब था, बल्कि इसका उपयोग करने वाला मनुष्य अधम था।"

26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा ने संविधान को अपनाया।
अपने काम को पूरा करने के बाद, संविधान सभा में बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर।

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 44, अंक : 07, 16-30 नवंबर 2020

कार्यकारी अध्यक्ष
चंदन पाल

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर कुसुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अरविन्द अंजुम**
अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. क्या किसी गांधी को चंपारण की तलाश... 3
3. धर्म एक नशा है और धर्मांधता एक... 4
4. सर्वधर्म समभाव बनाम धार्मिक... 7
5. सर्वधर्म समभावी होने के लिए... 8
6. गंगा-जमुनी तहजीब का इंकलाबी... 9
7. अमेरिकी चुनाव में मतदाताओं का... 10
8. कठिन समय में हवा का रुख मोड़ने वाले... 11
9. गांधीजी का वह जादुई स्पर्श... 12
10. जिस संविधान की कसमें खाते हैं... 13
11. तिल-तिल कर मरता उदार लोकतंत्र... 15
12. नहीं थम रहा राजनीति में अपराधियों... 16
13. भूख का जटिल जाल... 17
14. प्रदेशों में सबसे सुशासित केरल... 18
15. गतिविधियां एवं समाचार... 19
16. सर्वोदय दैनंदिनी : 2021... 20

संपादकीय

वैश्विक परिदृश्य में हमारी चुनौतियां

वैश्विक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। अजरबैजान व अर्मीनिया के बीच युद्ध ने अत्रयक्ष रूप से धार्मिक रंग लेना भी शुरू कर दिया है। फ्रांस में एक शिक्षक की उसके विद्यार्थी द्वारा हत्या के बाद अभिव्यक्ति की आजादी एवं धार्मिक भावना के आधार पर हत्या—इन दो अतियों के बीच मानवीय मूल्यों के हनन को हर खेमे से अपनी सुविधानुसार सहमति मिल रही है।

विश्व भर में ध्रुवीकरण को बढ़ाने के लिए नफरत की ताकतें पूरे जोरशोर से लगी हुई हैं। लोकतांत्रिक देशों में ये नफरत की ताकतें चुनाव के दौर में और अधिक सक्रिय हो जाती हैं। अमेरिका में हाल में हुए चुनाव प्रचार में चीन के विरुद्ध नफरत को मुख्य मुद्दा बनाने की कोशिश की गयी। गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, पर्यावरण, शोषण आधारित विकास आदि मुद्दे इस दौर में कहीं पीछे छूटते जाते हैं। पूंजीवादी देशों में इन पक्षों के अलावा एक पक्ष प्रभावी प्रशासन का भी होता है। अमेरिका में कोविड के नियंत्रण में सरकार की भूमिका भी चुनाव का एक मुद्दा रहा है।

इस विश्लेषण का उद्देश्य दो बातों को रेखांकित करना है। पहला, पूंजीवादी विकास के अग्रिम पंक्ति वाले देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों का वर्चस्व मजबूत है और बढ़ता जा रहा है। दूसरे, उनके विकास मॉडल की नकल करने वाले देशों में मूल मुद्दे पीछे छूटते जा रहे हैं।

नफरत की राजनीति ने विश्व भर में एक नये परिवर्तन को भी औचित्य प्रदान करना शुरू कर दिया है। सन् 1985 से 90 के बीच वैश्विक कारपोरेटी जमात के दबाव में मुक्त व्यापार के विचार को विश्व भर के देशों पर लाद दिया गया था। आज जब चीन के साथ व्यापार में अमेरिका का व्यापार घाटा बढ़ रहा है, तो वह पुनः संरक्षणवादी नीतियों को अपनाना चाहता है। लेकिन इसके लिए वह आर्थिक तर्कों को रखने के बजाय नफरत की राजनीति को माध्यम बना रहा है। युद्ध और नफरत की राजनीति भी संरक्षणवाद को जन्म देती है। जबकि पूंजीवादी विकास की अग्रिम पंक्ति के देश, पिछड़े देशों को अपने विकास के लिए संरक्षणवाद की नीति नहीं अपनाने देते हैं।

विश्व में उभर रही गोलबंदी, नये तरह के ध्रुवीकरण व संरक्षणवाद को पैदा कर रही है। और हमने जैसा कि पहले कहा, द्वितीय व तृतीय पंक्ति के देश अपने देश की जनता के मूल प्रश्नों से हटकर इसे वैश्विक गोलबंदी व संरक्षण वाद की नीति को बढ़ाने के लिए अपने देशों के अंदर भी नफरत की राजनीति को बढ़ा रहे हैं। तात्पर्य यह है कि देश के अंदर की नफरत की राजनीति तथा वैश्विक स्तर पर नफरत की राजनीति के तार एक दूसरे से जुड़े हैं तथा कारपोरेटी निजाम की रणनीति का हिस्सा हैं।

इस राणनीति को बढ़ाने के लिए सभी संस्थाओं की निष्पक्षता और जनवादी चरित्र को नष्ट किया जा रहा है। इसमें सबसे बड़ी भूमिका शिक्षा एवं मीडिया की है। शिक्षा एवं मीडिया द्वारा लोगों की मानसिकता में दूरगामी परिवर्तन किया जा रहा है। जो वैकल्पिक विमर्श है, वह हाशिये पर चला गया है। हर संगठन के भीतर इतनी कलह व विवाद को विकसित किया जा रहा है कि वे अपनी साख व विश्वसनीयता खो दें।

ऐसे में जरूरी है कि लोक जीवन के स्तर पर लोगों को संगठित किया जाये। इस या उस चुनाव में आये नतीजों पर बहुत भरोसा न करें। जनता के बुनियादी मुद्दों को विमर्श की मुख्य धारा में लायें। चुनावी राजनीति के बाहर जितनी भी परिवर्तनशील शक्तियां हैं, उन्हें आपस में मजबूत ताल-मेल विकसित करना होगा। एक बड़ी टीम वकीलों की भी हर स्तर पर खड़ी करनी होगी। क्योंकि आंदोलनकारियों को परेशान करने के लिए उन पर झूठे मुकदमे भी लादे जायेंगे। साथ ही आपस के छोटे-मोटे मतभेदों से ऊपर उठना होगा। जो मानसिक सक्रियता चुनाव के दौरान दिखती है, वह मानसिक सक्रियता तभी बनी रहेगी, जब जन संघर्षों का अभियान चलेगा। अहिंसक क्रांति को एक नयी ऐतिहासिक परिस्थिति से मुकाबला करने के लिए अपने को तैयार करना होगा, जिसकी दृष्टि वैश्विक हो तथा संघर्ष व रचना का सघन क्षेत्र लोक स्तर पर हो। **–बिमल कुमार**

क्या किसी गांधी को चंपारण की तलाश है?

❑ मनीष सिंह

जो नील कपड़े रंगने के काम आता है, बंगाल और बिहार के किसानों के लिए वह हलाहल था। एक बीघा जमीन में तीन कट्ठा पर नील उगाना जरूरी था। नील जहां लगती, वह जमीन बेकार हो जाती। सरकारी अफसर और ठेकेदारों के गुमाश्ते उसे अगली बार बेहतर जमीन पर उगवाते। खाने के लिए अनाज की खेती पूरी नहीं पड़ती और नील को ठेकेदार कौड़ियों के दाम ले जाते।

आसपास ही फैक्ट्री होती, वहां इसका अर्क निकाला जाता, सुखाकर यूरोप भेज दिया जाता। किसान बदहाल थे और अफसर, व्यापारी मालामाल। यह कोई सौ सालों से चला आ रहा था। दो बार विद्रोह हुआ, एक बार तो बड़ी हिंसा हुई मगर कुछ बदल न सका। तीनकठिया प्रथा किसान की धीमी और तयशुदा मौत थी।

राजकुमार शुक्ला से देखा न जाता था। कई बार उन्होंने कांग्रेस के बड़े नेताओं से अनुरोध किया कि वे चंपारण आएं और नील के किसानों की सुध लें। तिलक, मालवीय जैसे लोगों ने सुना, लेकिन वे बड़े मसलों में मसरूफ थे। चंपारण, अपने मसीहा की बाट जोहता रहा।

लखनऊ में 1916 में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। राजकुमार शुक्ला की बात उस वकील से हुई, जो दक्षिण अफ्रीका से मशहूर होकर लौटा था। मोहनदास भारत आकर कांग्रेस से जुड़ गए थे। राजकुमार शुक्ला को उम्मीद तो थी नहीं, मगर बात छेड़ दी। आग्रह किया कि कांग्रेस नील के किसानों की सुध ले। गांधी ने बाद में लिखा- चंपारण भारत के नक्शे में कहां पड़ता था, उन्हें नही मालूम था। मगर राजकुमार को वादा कर दिया। इसलिए कि गांधी को खुद एक चंपारण की तलाश थी।

1917 में अप्रैल की एक दुपहरी, गांधी के कदमों ने चंपारण की धरती को छुआ। वकील गांधी के साथ और भी वकील थे- बृजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, मजहरुल हक, अनुग्रह नारायण सिन्हा। सबने कानून का अध्ययन किया। कांट्रेक्ट देखे। और फिर जमीनी हकीकत देखने भी निकल पड़े।

लोग जुटने लगे, तो प्रशासन को भनक लगी। शांति भंग का अंदेशा था, सो अधिकारियों ने तत्काल सबको चंपारण छोड़ने का आदेश दिया। आश्चर्य, कि 'कांग्रेसी गैंग' ने बड़ी ठसक से इनकार कर दिया।

हुआ वही, जो होना था। गिरफ्तारी, पेशी के बाद जज ने जिला छोड़ने का हुक्म दिया, साथ मे 100 रुपये की जमानत मांगी। गांधी ने जमानत देने से इनकार कर दिया। कहा- न चंपारण छोडूंगा, न आंदोलन छोडूंगा। कचहरी के बाहर किसानों की भारी भीड़ थी। मौके की नजाकत देख जज ने सबको छोड़ दिया। गांधी विजेता की तरह बाहर आये।

इस किस्से ने बैरिस्टर गांधी की चमक बढ़ा दी। अब उनकी बातें, बेहद गम्भीरता से सुनी जातीं। जहां जाते, हुजूम इंतजार करता। धीमी, महीन आवाज में यह मध्यम कद, इकहरे बदन का शख्स, मजबूती से कहता- 'आवाज उठाओ। नील उगाना बन्द कर दो। अनाज उगाओ। अपना हक मांगो। एक रहो, मिलकर लड़ो।'

गांधी के अनुयायी बढ़ते जा रहे थे। वे सिर्फ नील के आंदोलन तक सीमित न थे। साफ-सफाई, अस्पृश्यता, शिक्षा और निर्भय होकर जीने की बात कहते। ये बातें सीधी सच्ची, और बेहद सरल थीं। आपको ताकतवर सरकार,जमींदार, ठेकदार और गुमाश्तों से नहीं, बल्कि अपने गिर्द के भय से, वातावरण से, औरों के साथ मिलकर लड़ना है। सहने से इनकार भर तो करना है।

सरकार ने दबाव महसूस किया। पहला विश्वयुद्ध जारी था, रूस में बोल्शेविक क्रांति अपने चरम पर थी। जर्मन चढ़े आ रहे थे। ऐसे में भारत में कोई बवाल नही चाहिए था। एक अग्रेरीयन रिफॉर्म कमेटी बनी। उसमें गांधी को भी रखा गया। कमेटी की अनुशंसा पर तीनकठिया सिस्टम खत्म हुआ। नील उगाना अनिवार्य नही रहा। कीमत तय की गई, टैक्स हटाये और घटाए गए। ठेकेदारों पर नियंत्रण हुआ। फैक्ट्रियों में वेजेस बढ़े।

चंपारण का सत्याग्रह, कांग्रेस और गांधी की शानदार जीत थी, और ब्रिटिश की भारत में पहली हार .. । अंधेरे में रोशन खिड़की खोलने वाला आ गया है, यह खबर सबको लग गयी।

गांधी को पता चला कि हिंदुस्तान के मुंह में जुबान भी है। उनका सत्याग्रह हिंदुस्तान में भी कारगर है। कांग्रेस को पता चला कि निवेदन-दरख्वास्त की राजनीति से अलग भी रास्ता है। युवाओं को पता चला कि हिंसात्मक क्रांतिकारी गतिविधियों से हटकर भी एक मार्ग है। वह मार्ग, जिसमें पूरा भारत जुड़ सकता था। गांधी इसके प्रणेता थे।

चंपारण एक प्रयोग था। सत्याग्रह की थ्योरी, जो कांग्रेस के भीतर भी सीमित समर्थन जुटा पाती थी, अब जमीन पर सत्यापित हो चुकी थी। गांधी रातों रात जन साधारण के लीडर हो गए।

आगे खेड़ा सत्याग्रह और फिर असहयोग आंदोलन के साथ वे भारत की राजनीतिक चेतना के केंद्र हो गए। चंपारण सत्याग्रह के वक्त कुछ लोग उन्हें बापू कहने लगे थे । तो साथी सन्त राउत ने एक सभा में गांधी 'महात्मा' कहकर पुकारा।

यानी बैरिस्टर गांधी, चंपारण से बापू और महात्मा बनकर लौटा। बापू सम्बोधन तो उन्होंने खुशी से ग्रहण किया, पर महात्मा का सम्बोधन ...! यह एक सम्बोधन और चंपारण का यह नील, गांधी की ग्रीवा में उसी तरह ठहर गया, जैसे शिव की ग्रीवा में हलाहल ठहर गया था।

चंपारण की जमीन को गांधी का स्पर्श हुए सौ साल गुजर चुके हैं। किसान आज फिर पीड़ा में है। एक अदद गांधी की तलाश फिर तेज है। जाने कितने चंपारण बाट जोह रहे हैं।

पर क्या किसी गांधी को चंपारण की तलाश है? ❑

ईशनिंदा

धर्म एक नशा है और धर्मान्धता एक मानसिक विकृति

❑ विजय शंकर सिंह

फ्रांस में एक अध्यापक की बर्बर और गला रेत कर की गयी हत्या के कारण दुनिया भर में धर्मांधता, ईशनिंदा और ईशनिंदा पर हत्या तक कर देने की प्रवृत्ति पर फिर एक बार बहस छिड़ गयी है। हालांकि यह बहस धर्मों के प्रारंभ से लेकर अब तक चलती रही है। धर्मों में आपसी प्रतिद्वन्द्विता और 'मेरी कमीज तुम्हारी कमीज से अधिक धवल है, की लाइन पर अक्सर बहस होती रहती है। धार्मिक और आध्यात्मिक मुद्दों पर विचार विमर्श और शास्त्रार्थ की परंपरा का स्वागत किया जाना चाहिए, पर जब धर्म, राज्य के विस्तार मोह की तरह खुद के विस्तार की महत्वाकांक्षा से ग्रस्त हो जाता है, तो वह राजनीति के उन्हीं विषाणुओं से संक्रमित हो जाता है, जो राज्य विस्तार के अभिन्न माध्यम होते हैं। तब धर्म अपने उद्देश्य, मनुष्य में नैतिक मूल्यों की स्थापना और व्यक्ति को नैतिक और मानवीय मूल्यों से स्खलित न होने देने से ही भटक जाता है। फिर धर्म, राज्य सत्ता के एक नए कलेवर में अवतरित हो जाता है, जो कभी-कभी इतना महत्वपूर्ण और असरदार हो जाता है कि वह राज्य को ही नियंत्रित करने लगता है। इसमें राज्यसत्ता को धर्मभीरु जनता का स्वाभाविक साथ भी मिल जाता है।

इस्लाम की मान्यता के अनुसार, पैगम्बर के चित्र बनाना वर्जित है। इस हत्या के बाद फ्रांस के धर्मनिरपेक्ष समाज मे आक्रोश फैल गया और उस पर राष्ट्रपति मैक्रां ने जो बात कही, उसकी व्यापक प्रतिक्रिया मुस्लिम देशों में हुई। फ्रेंच राष्ट्रपति के बयान के बाद तुर्की की प्रतिक्रिया सामने आयी और फिर, फ्रांस और मुस्लिम देशों के आपसी संबंध तनावपूर्ण हो गए हैं। राष्ट्रपति मैक्रों ने बीबीसी से एक साक्षात्कार में कहा कि, 'मैं मुसलमानों की भावनाओं को समझता हूं, जिन्हें पैगंबर मोहम्मद के कार्टून दिखाए जाने से झटका लगा है। लेकिन, जिस 'कट्टर इस्लाम' से वे लड़ने की कोशिश कर रहे हैं, वह सभी लोगों, खासतौर पर मुसलमानों के लिए ख़तरा है। मैं इन भावनाओं को समझता हूं और उनका सम्मान करता हूं। पर आपको अभी मेरी भूमिका समझनी होगी। मुझे इस भूमिका में दो काम करने हैं, 'शांति को बढ़ावा देना और इन अधिकारों की रक्षा करना।' आगे वे कहते हैं कि वे अपने देश में बोलने, लिखने, विचार करने और चित्रित करने की आज़ादी का हमेशा बचाव करेंगे। फ्रांसीसी राष्ट्रपति ने यह भी कहा कि 'वे मुसलमान कट्टरपंथी संगठनों के खिलाफ़ सख़्त कार्रवाई करेंगे। फ्रांस के अनुमानित 60 लाख मुसलमानों के एक अल्पसंख्यक तबक़े से 'काउंटर-सोसाइटी' पैदा होने का ख़तरा है।' काउंटर सोसाइटी या काउंटर कल्चर का अर्थ है, एक ऐसा समाज तैयार करना, जो कि उस देश के समाज की मूल संस्कृति से अलग होता है।

इमैनुएल मैक्रों के इस फ़ैसले पर कुछ मुस्लिम देश में नाराज़गी ज़ाहिर की गई। कई देशों ने फ्रांसीसी सामान के बहिष्कार की भी अपील की है। तुर्की के राष्ट्रपति ने कहा कि, 'अगर फ्रांस में मुसलमानों का दमन होता है तो दुनिया के नेता मुसलमानों की सुरक्षा के लिए आगे आएं। फ्रांसीसी लेबल वाले सामान न ख़रीदें।'

आज दुनिया भर में जिस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (Freedom of expression) की बात की जा रही है, उसका श्रेय महान फ्रेंच क्रांति को दिया जाता है। जब दुनिया मध्ययुगीन सामंतवाद के काल मे पड़ी हुई थी, तभी फ्रांस में एक ऐसी क्रांति हुई, जिसने दुनिया को मानवाधिकारों और नागरिक अधिकार की अस्मिता की एक नयी रोशनी दिखाई। पहली बार दुनिया ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के त्रिघोष का नाद सुना। यह घटना दुनिया की उन अत्यंत महत्वपूर्ण घटनाओं में शुमार की जाती है, जो दुनिया के लिये टर्निंग प्वाइंट घटनाएं मानी जाती हैं।

फ्रांस की जनता ने लुई सोलहवें के शासन को उखाड़ फेंका और संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की। हालांकि यह यूरोप का पहला लोकतंत्र नहीं था, बल्कि इंग्लैंड में संसदीय लोकतंत्र की परंपरा का आरंभ 1215 ई के मैग्ना कार्टा और 1600 ई के ग्लोरियस रिवोल्यूशन से हो चुका था। पर कहां इंग्लैंड की रक्तहीन क्रांति और कहाँ फ्रांस की यह जनक्रांति, दोनों के स्वरूप में मौलिक अंतर था। हालांकि फ्रांस में नेपोलियन के समय में राजतंत्र कुछ बदले स्वरूप में पुनः आया लेकिन वह लंबे समय तक नहीं रह सका। फ्रांस अपनी राज्यक्रांति से उद्भूत मूल्यों के साथ मज़बूती से जुड़ा रहा।

धर्मनिरपेक्षता, फ्रेंच संविधान का मूल भाव है। लेकिन, सेक्युलरिज्म का फ्रेंच स्वरूप हमारे देश के सर्वधर्म समभाव से अलग है। सेकुलरिज्म की फ्रेंच अवधारणा (French concept of secularism) का जन्म भी, 1789 ई की फ्रेंच राज्यक्रांति का परिणाम है। परिवर्तन की वह पीठिका, तत्कालीन फ्रेंच विचारकों, रूसो, वोल्टेयर तथा अन्य महानुभावों द्वारा तैयार की गयी थी। पहली बार राज्य को चर्च से अलग करने की बात की गयी। यूरोप के इतिहास में यह एक क्रांतिकारी बदलाव था। इस परिवर्तन में राजा और सामन्त तो जनता के निशाने पर थे ही, वर्ग भी इससे बच न सका। क्रान्तिकारी राष्ट्रीय असेंबली ने 1789 में चर्च की सारी भू संपदा को जब्त कर लिया। धार्मिक जुलूसों और सलीबों के प्रदर्शन पर भी पाबन्दी लगा दी गई। 2 सितंबर 1792 को पेरिस की सड़कों पर आक्रोशित भीड़ ने 3 बिशपों और 200 से ज्यादा पादरियों की हत्या कर दी, जिसे फ्रांस के इतिहास में सितंबर जनसंहार के नाम से जाना जाता है। इस क्रांति के बाद, राज्य और चर्च पूरी तरह अलग हो गए। राजसत्ता ने चर्च का बहिष्कार कर दिया। लंबे समय तक चर्च और राज्यसत्ता के अविभाज्य होने के बाद, चर्च का राज्य से अलग हो जाना, यूरोपीय इतिहास की एक बड़ी घटना थी। धर्म के प्रति उदासीन और उसे अप्रासंगिक कर देने का जो भाव तब विकसित

हुआ था, वह अब फ्रेंच समाज का स्थायी भाव बन गया है। यह मनोवृत्ति आज भी फ्रेंच सेकुलरिज्म में मौजूद है।

1805 ई में फ्रांस ने बाक़ायदा एक क़ानून पास किया- सेपरेशन ऑफ़ द चर्चेज़ एंड स्टेट- और राज्य के चर्च से संबंध पर प्रतिबंध लगा दिया। फिर 1946 ई में तो और कमाल किया - सारी धार्मिक इमारतों- चर्च और यहूदी सिनेगाग्स को राज्य की संपत्ति बना दिया। मस्जिदें तब बहुत कम थीं- अब भी बहुत कम हैं। आज भी फ्रांस में किसी धर्म का दिखने वाला कोई प्रतीक किसी सार्वजनिक जगह पर नहीं पहना जा सकता। क्रॉस भी नहीं। यह प्रतिबंध 2004 ई में लगा- इसमें ईसाई क्रॉस, यहूदी स्टार ऑफ़ डेविड, सिख पगड़ी, इस्लामिक हिजाब- सब सार्वजनिक जगहों से प्रतिबंधित किए गए। फिर आया 2011 ई, अबकी बार सभी अस्पतालों में दशकों से चल रहे ईसाई उपदेश प्रतिबंधित हुए। फ्रांस की यह लड़ाई इस्लाम से नहीं है- धर्मान्धता से है, उसके नाम पर कत्लोगारत से है।

आज धर्म को लेकर जो मज़ाक़ वहां की कैरिकेचर पत्रिका शार्ली हेब्दो अक्सर बनाती रहती है, उसके पीछे यही मानसिकता है। फ्रांस में केवल 30% जनसंख्या आस्तिक है। वैज्ञानिक सोच, तर्कशील उर्वर विचारकों और अस्तित्ववाद के दर्शन ने वहां जिस सेक्युलरिज्म का विकास किया, वह हमारी धर्म निरपेक्षता के मापदंड से अलग है। यदि आप भारतीय सन्दर्भ से, फ्रांस के सेक्युलरवाद का मूल्यांकन करेंगे तो फ्रांस के सेकुलरिज्म को समझ नहीं पाएंगे। भारत में सनातन धर्म में जहां मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना पहले ही कह दिया गया है और हर बिन्दु पर शास्त्रार्थ की दीर्घ और समृद्ध परंपरा है, वहां आहत भाव बहुत ही कम दिखता है। काशी में कबीर की मौजूदगी और उनका धर्म, ईश्वर, पौरोहित्यवाद के खिलाफ खुला तंज इस बात का प्रमाण है कि समाज बहुत कुछ ऐसी आलोचनाओं से आहत नहीं होता था। भारत में धर्म का ऐसा व्यापक जनविरोध हुआ भी नहीं। क्योंकि यहां सनातन धर्म में ही अनेक सुधारवादी आंदोलन लगातार चलते रहे और यह क्रम स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्यसमाज के आंदोलन तक निरन्तर जारी रहा, जिससे धर्म समय-समय पर प्रक्षालित होकर नए कलेवर में सामने आता रहा। अतीतजीविता तो थी, पर जड़ता कम ही रही।

जब फ्रांस की घटना पर समस्त मुस्लिम देश एकजुट हुए तो इसकी वैश्विक प्रतिक्रिया भी हुई। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। लेकिन एक नयी बहस छिड़ गयी कि, क्या आहत होने पर किसी को किसी की भी हत्या कर देने का अधिकार है? यहीं एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि अगर फ्रांस के उस अध्यापक की हत्या का समर्थन किया जा रहा है, तो फिर पिछले कुछ सालों से भारत में, आस्था के आहतवाद के अनुसार होने वाली मॉब लिंचिंग का विरोध किस आधार पर किया जा सकता है? फिर यही मान लीजिए कि जिसकी आस्था आहत हो, वह फिर आहत करने वालों की हत्या ही कर दे। फिर एक बर्बर और प्रतिगामी समाज की ओर ही तो लौटना हुआ ?

आस्था से हुआ आहत भाव कितना भी गंभीर हो, पर उसकी प्रतिक्रिया में की गयी किसी मनुष्य की हत्या एक हिंसक और बर्बर आपराधिक कृत्य है। जो कुछ भी उस किशोर द्वारा अपने अध्यापक के प्रति फ्रांस में किया गया है, वह अक्षम्य है और उसका बचाव बिल्कुल भी नहीं किया जाना चाहिए।

शार्ली हेब्दो का कार्टून आपत्तिजनक और निंदनीय है। इस कार्टून के खिलाफ फ्रेंच कानून के अंतर्गत अदालत का रास्ता अपनाया जाना चाहिए था, न कि हत्या का। अगर आहत भाव पर ऐसी हत्याओं का बचाव किया जाएगा और आहत होने पर हत्या या हिंसा की हर घटना औचित्यपूर्ण ठहराई जाने लगेगी तो फिर कानून के शासन का कोई मतलब नहीं रह जायेगा। शार्ली हेब्दो पहले भी पैगम्बर के आपत्तिजनक कार्टून छाप चुका है। उसने न केवल इस्लाम के ही बारे में आपत्तिजनक कार्टून छापे हैं, बल्कि उस अखबार में, कैथोलिक धर्म और चर्च के खिलाफ भी कार्टून छापे गए हैं। पहले भी 2012 में, पैगम्बर के आपत्तिजनक कार्टून छापने के बाद शार्ली हेब्दो के कार्यालय पर आतंकी हमला हुआ था और उसके 12 कर्मचारी मारे गए थे। लेकिन उस जघन्य आतंकी घटना के बाद भी उक्त अखबार की न तो नीयत बदली और न नीति। शार्ली हेब्दो ने अस्थायी कार्यालय से अपना अखबार निकालना जारी रखा और ऐसे ही कटाक्ष भरे, आपत्तिजनक कार्टून फिर छापे गए। पूरे फ्रांस या यूरोप में 'मैं हूँ शार्ली' का एक अभियान चलाया गया।

किसी की धर्म में आस्था है तो किसी की संविधान में और किसी की दोनों में। आस्था नितांत निजी भाव है। लेकिन, देश धर्म की आस्था से नहीं चलता है, बल्कि संविधान के कायदे कानून से चलता है। फ्रेंच कानूनों के अंतर्गत वहां के आस्थावान लोगों को शार्ली हेब्दो के खिलाफ कार्यवाही करनी चाहिए थी, न कि आतंकी हमला और अध्यापक की हत्या। धर्म के उन्माद और धर्म के प्रति आस्था के आहत होने की ऐसी सभी हिंसक और बर्बर प्रतिक्रियायें, चाहे वह गला रेत कर की जाने वाली हत्या हो, या मॉब लिंचिंग या भीड़ हिंसा, यह सब आधुनिक और सभ्य समाज पर एक कलंक हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि ऐसा कार्टून बनाना निंदनीय है और ईश्वर धर्म और पैगम्बर से जिनकी भी आस्था जुड़ी हो, उसे आहत नहीं किया जाना चाहिए। पर इसका यह अर्थ बिल्कुल भी नहीं है कि ऐसा कुकृत्य करने वालों की हत्या ही कर दी जाय और फिर उस हत्या के पक्ष में खड़े हो जाया जाय।

पैगम्बर हजरत मोहम्मद ने अरब के तत्कालीन समाज में एक प्रगतिशील राह दिखाई थी। एक नया धर्म शुरू हुआ था, जो मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करता था, समानता और बंधुत्व की बातें करता था। इस धर्म का प्रचार और प्रसार भी खूब हुआ। वह धर्म इस्लाम के नाम से जाना गया। पर आज हजरत मोहम्मद और इस्लाम पर आस्था रखने वाले धर्मानुयायियों के लिए यह सोचने की बात है कि उन्हें क्यों बार-बार कुरान से यह उद्धरण देना पड़ता है कि इस्लाम शांति की बात करता है,पड़ोसी के भूखा सोने पर पाप लगने की बात करता है, मज़दूर की मजदूरी उसका पसीना सूखने के पहले दे देने की बात करता है और भाईचारे के पैगाम की बात करता है। आज यह सारे उद्धरण, जो बार-बार सुभाषितों में दिए जाते हैं, उनके विपरीत इस्लाम की यह छवि क्यों है कि इसे एक हिंसक और आतंक फैलाने वाले धर्म के रूप में देखा जाता है। यह मध्ययुगीन धर्म के विस्तार

की आड़ में राज्यसत्ता के विस्तार की मनोकामना से अब तक मुक्त क्यों नहीं हो पाया है?

फ्रांस में जो कुछ भी हुआ या हो रहा है, वह एक बर्बर, हिंसक और मध्ययुगीन मानसिकता का परिणाम है। उसकी निंदा और भर्त्सना तो हो ही रही है, पर सवाल यह है कि इतना उन्माद और पागलपन की इतनी घातक डोज 18 साल के एक किशोर में कहाँ से आ जाती है और कौन ऐसे लोगों के मन मस्तिष्क में यह जहर इंजेक्ट करता रहता है कि एक कार्टून उसे हिंसक और बर्बर बना देता है? ऐसी घटनाएं यह बताती है कि धर्म एक नशा है और धर्मान्धता एक मानसिक विकृति।

एक सवाल मेरे जेहन में उमड़ रहा है और यह सवाल उनसे है, जो इस्लाम के आलिम और धर्माचार्य हैं तथा अपने विषय को अच्छी तरह से जानते समझते हैं। एक बात तो निर्विवाद है कि इस्लाम में मूर्तिपूजा का निषेध है और निराकार ईश्वर को किसी आकार में बांधा नहीं जा सकता है। इसी प्रकार से पैगम्बर मोहम्मद की तस्वीर भी नहीं बनायी जा सकती है। यह वर्जित है और इसे किया भी नहीं जाना चाहिए। यह निंदनीय और शर्मनाक है। पर अगर ऐसा चित्र या कार्टून, कोई व्यक्ति चाहे सिरफिरेपन में आकर या जानबूझकर कर बना ही दे तो क्या ऐसे कृत्य के लिये पैगम्बर ने कहीं कहा है कि ऐसा करने वाले व्यक्ति का सर कलम कर दिया जाय ?

अब एक महत्वपूर्ण सवाल उठता है कि जो कुछ खून खराबा, पैगम्बर के कार्टून पर फ्रांस में हो रहा है, क्या इस्लाम में वह जायज है? एक शब्द है ईशनिंदा यानी ब्लासफेमी। क्या ईशनिंदा की कोई अवधारणा, इस्लाम में है? 2012 में जब शार्ली हेब्दो ने विवादित कार्टून छापा था, तब दिल्ली के प्रसिद्ध इस्लामी विद्वान मौलाना वहीदुद्दीन खान ने इस विषय पर टाइम्स ऑफ इंडिया में एक लेख लिखा था। उक्त लेख का एक अंश पढ़ें -

'कुरान में ईशनिंदा के लिए कोई प्रावधान नहीं है। कुरान में बहुत साफ-साफ यह बात लिखी है कि इस्लाम में ईशनिंदा के लिए सज़ा नहीं, बल्कि इस पर बौद्धिक बहस का प्रावधान है। कुरान हमें बताता है कि प्राचीन काल से ईश्वर ने हर शहर हर समुदाय में पैगंबर भेजे हैं। कुरान बताता है कि हर दौर में पैगंबर के समकालीन लोगों ने उनके प्रति नकारात्मक रवैया अपनाया। कुरान में 200 आयतें ऐसी हैं, जो बताती हैं कि पैगंबरों के समकालीन विरोधियों ने ठीक वही काम किया था, जिसे आज ईशनिंदा कहा जा रहा है। सदियों से पैगंबरों की आलोचना उनके समकालीन लोगों द्वारा की जाती रही है (कुरान 36:30)। कुरान के मुताबिक पैगंबर के समकालीन लोगों ने उन्हें झूठा (40:24), मूर्ख (7:66) और साजिश रचने वाला (16:101) तक करार दिया था। लेकिन कुरान में यह कहीं नहीं लिखा है कि जिन लोगों ने ऐसे शब्द कहे या कहते हैं, उन्हें पीटा, मारा या और कोई सज़ा दी जाए। इससे पता चलता है कि पैगंबर की आलोचना करने या उन्हें अपशब्द कहने वाले को सज़ा नहीं दी जा सकती है। अगर ऐसा होता है तो अपशब्द या आलोचना करने वाले व्यक्ति को शांतिपूर्ण तरीके से समझाया जा सकता है या उसे चेतावनी दी जा सकती है। पैगंबर को अपशब्द कहने वाले व्यक्ति को किसी तरह की शारीरिक सज़ा नहीं दी जानी चाहिए। ऐसे व्यक्ति को सुतर्क के जरिए समझाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में सज़ा देने के बजाय शांतिपूर्ण ढंग से समझा बुझाकर उस व्यक्ति को बदलने की कोशिश करनी चाहिए। जो लोग पैगंबर के खिलाफ नकारात्मक भाव रखते हैं, ईश्वर उनका फैसला करेगा। ईश्वर उनके हृदय की गहराइयों में छुपी बातों को भी जानता है। ईश्वर में आस्था रखने वाले लोगों को नकारात्मक बातों को टालने की नीति अपनानी चाहिए। इसके अलावा उन्हें सभी के शुभ की इच्छा रखना और ईश्वर के संदेश के प्रचार-प्रसार करने जैसी बातों में खुद को व्यस्त रखना चाहिए।इस सिलसिले में एक अन्य अहम बात यह है कि कुरान में कहीं भी इस बात का जिक्र नहीं है कि अगर कोई व्यक्ति पैगंबर के खिलाफ अपशब्दों का इस्तेमाल करता है तो उसे ऐसा करने से रोकना चाहिए। कुरान में कहा गया है कि पैगंबर के विरोधियों के खिलाफ अपशब्दों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए।'

आगे वे कहते हैं, 'कुरान की इन आयतों से साबित होता है कि इस्लाम में आस्था रखने वाले लोगों का यह काम नहीं है कि वे पैगंबर की आलोचना करने वाले या अपशब्द कहने वालों पर नज़र रखें और उन्हें मारने की योजना बनाएं। इन बातों के मद्देनजर आज के दौर में कई मुसलमान कुरान के उपदेशों और संदेशों के ठीक उलट काम कर रहे हैं।'

धर्म और राज्य का कॉम्बिनेशन सबसे खतरनाक कॉम्बिनेशन होता है। राज्य विस्तार की अवधारणा पर चलता है और धर्म जब राज्य के विस्तार के वाहक की भूमिका में आ जाता है तो फिर वह धर्म स्वतः अपने उद्देश्य से भटक जाता है। सेमेटिक धर्मों की सबसे बड़ी त्रासदी भी यही रही है कि वह राज्य से नियंत्रित होता रहा है। यही नियंत्रण इस्लाम और ईसाई संघर्षों, जिसे इतिहास में क्रुसेड के नाम से जाना जाता है, का परिणाम रहा है। राज्य और धर्म का घालमेल घातक, हिंसक, बर्बर और एक मध्ययुगीन कांसेप्ट है।

ऐसे कार्टूनों का प्रकाशन, अभिव्यक्ति की आज़ादी का दुरुपयोग है, यह मानने वालों के लिए इसे फ्रांस के ही सन्दर्भ में सोचना पड़ेगा। सभी समाजों की धार्मिक आस्था की सहनशीलता नापने का कोई एक सर्वमान्य मापदंड नहीं हो सकता है। 1789 ई की फ्रेंच क्रान्ति के वक्त' मनुष्य के अधिकारों की घोषणा 'नामक दस्तावेज जारी किया गया था, जिसके अनुच्छेद 4 और 5 में मनुष्य की व्यक्तिगत आज़ादी की अवधारणा दी गयी है। इसमें कहा गया है कि 'मनुष्य को वह सब कुछ करने का प्राकृतिक अधिकार प्राप्त है, जिससे किसी अन्य के समान अधिकार प्रभावित न हों और सार्वजनिक अहित उत्पन्न न हो रहा हो। इस आज़ादी की हद वह होगी, जिसे क़ानून द्वारा तय किया जाएगा।'

यह प्रावधान आज भी फ्रांस के संविधान का अंग है। अभिव्यक्ति की आज़ादी पर अक्सर बहस होती रहती है। उसकी सीमा क्या हो, इसपर विचार करने के दौरान यह सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए कि आप को सड़क पर खड़े होकर छड़ी घुमाने का अधिकार है, पर वहीं तक, जब तक कि वह किसी की नाक पर न लग जाय। हमारे समाज में सत्य बोलने को सर्वोपरि माना गया है, पर वहीं अप्रिय सत्य यानी ऐसा सत्य, जो किसी को आहत करे, बोलने से बचने की बात भी कही गयी है। ❑

मथुरा

सर्वधर्म समभाव बनाम धार्मिक कठमुल्लावाद

❑ अनिल शुक्ल

'सर्वधर्म समभाव' की सोच और कर्तव्य कैसे धार्मिक कठमुल्ला-वाद, सोशल मीडिया और मीडिया के क्रूर प्रचार की भेंट चढ़ जाते हैं और कैसे पुलिस-प्रशासन इन मामलों में एकतरफ़ा कार्रवाई करने को तत्काल सक्रिय हो जाता है, इसका उदाहरण दिल्ली से मथुरा आए 'ख़ुदाई ख़िदमतगार संस्था' के कार्यकर्ता हैं। मथुरा पुलिस ने 'संस्था' के प्रमुख को दिल्ली पहुँच कर गिरफ्ताार कर लिया है। 'ख़ुदाई ख़िदमतगार' संस्था भारत रत्न सीमान्त गांधी ख़ान अब्दुलगफ्फ़ार ख़ान द्वारा स्थापित की गई थी। इन कार्यकर्ताओं का स्वागत करने वाली संस्था के संयोजक के पॉपुलेशन फ्रंट ऑफ़ इंडिया (पीएफआई) से जुड़े होने की कहानियां भी टीवी चैनलों पर चलाई गयीं। संयोजक का दोष इतना है कि वह पेशे से वकील हैं।

'ख़ुदाई ख़िदमतगार' संस्था के 4 कार्यकर्ता दिल्ली से '84 कोस ब्रज यात्रा' की परिक्रमा करने की नीयत से मथुरा-वृन्दावन आए थे। इनमें संस्था के सचिव फ़ैज़ल ख़ान के अलावा मोहम्मद चांद, नीलेश गुप्ता और आलोक रत्न शामिल थे। 'परिक्रमा' का उद्देश्य 'देश और दुनिया की भलाई के लिए धर्मों के उज्ज्वल पक्ष को आगे रखने की ज़रूरत' को बताया गया था। उनकी यात्रा से पहले 27 अक्टूबर को मथुरा की स्थानीय संस्था 'क़ौमी एकता मंच' ने मथुरा में उनका नागरिक अभिनन्दन किया। अपने अभिनंदन समारोह में बोलते हुए संस्था के सचिव फ़ैज़ल ख़ान ने रामचरितमानस की चौपाइयों, क़ुरआन शरीफ की आयतों और हदीस के हवाले से 'सभी धर्मों में निहित समान सद्गुणों' को 'ईश्वरीय देन' कहा। सीमान्त गांधी का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि ग़ैर बराबरी और नाइंसाफ़ी को समाप्त करके सभी धर्मों में प्रीति पैदा करने की शिक्षा ही सभी धर्मों का मूल है। फ़ैज़ल ने भक्ति और सूफ़ी मार्ग के कवियों- कबीर, रहीम, रसखान और मीरा आदि के दोहों और भजनों के उदाहरण से देश की जनता के भीतर आपसी सद्भाव की आवश्यकता को रेखांकित किया। बताते हैं कि उक्त समारोह में बड़ी तादाद में मथुरा-वृन्दावन के बुद्धिजीवी और विभिन्न पेशों के लोग शामिल थे।

'परिक्रमा' को पूरी करके ये लोग विभिन्न मंदिरों में अभ्यर्थना करते और स्थानीय पुरोहितों तथा मंदिर में मौजूद भक्त जनों आदि के समक्ष अपनी यात्रा का उद्देश्य बताते हुए 29 अक्टूबर को नंदगांव के प्रसिद्ध मंदिर में पहुंचे। फ़ैज़ल ने मीडिया को बताया कि 'यहां मौजूद सेवायतों और भक्त जनों से हमारे अपने उद्देश्य की चर्चा के दौरान ही नमाज़ का समय हो गया था। जब हमने वहाँ मौजूद लोगों से नज़दीक में किसी मस्जिद की बाबत पूछा तो सेवायत कान्हा आदि ने कहा कि जब आप सभी धर्मों को समान समझते हैं तो यहाँ क्या मतभेद? यह भी भगवान का घर है। आप नमाज़ यहां भी कर सकते हैं, हमें कोई आपत्ति नहीं। सेवायतों का ऐसा उत्तर सुनकर हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने तथा चांद ख़ान ने मंदिर में ही अपनी नमाज़ अता की।'

यहां तक सब ठीक था। बाहर निकल कर 'सर्वधर्म समभाव' के इन आस्थावानों ने मंदिर के सेवायतों की इस 'ऊंची' सोच की प्रशंसा की नीयत से नमाज़ की अपनी तस्वीरों को सोशल मीडिया पर अपलोड कर दिया।

यह करते ही जैसे बवाल उठ खड़ा हो गयाा। न सिर्फ़ मथुरा, बल्कि दिल्ली तक के 'हिन्दू' और 'इस्लाम' के आस्थावानों ने जम कर उत्पात मचाया। सोशल मीडिया पर 3 दिन तक मंदिर परिसर के 'अपवित्र' होने और उसे पवित्र करने की नीयत से गंगाजल से धोने आदि की तस्वीरें चलती रहीं। उधर इसकी प्रतिक्रियास्वरूप कई मुस्लिम कठमुल्लावादी संगठनों के सोशल नेटवर्क पर भी फ़ैज़ल और उनके संगठन पर 'इस्लाम को नष्ट किये जाने' के आरोप की टिप्पणियां वायरल हुईं।

मथुरा-वृन्दावन के कथित संत समाज ने 'नन्द बाबा मंदिर' के सेवायतों को इस 'जघन्य अपराध' के लिए कस कर धमकाया और कठोर दबाव डाला। तीसरे दिन 1 नवंबर की रात 'मंदिर' के सेवायत कान्हा, मुकेश और शिवहरि गोस्वामी की तहरीर के आधार पर पुलिस थाना बरसाना में सब इन्स्पेक्टर दीपक कुमार पांडेय की ओर से एफआईआर दर्ज़ करवाई गई। इन लोगों ने पुलिस को बताया कि फ़ैज़ल आदि ने रसखान, मीरा आदि की हमसे चर्चा की, जो उनका भक्त होना दर्शाती थी। राजभोग का समय हो जाने पर हम लोग मंदिर के गर्भगृह में चले गए, इसी बीच इन्होने नमाज़ पढ़ के फोटो को वायरल कर दिया। एसएसपी मथुरा गौरव ने स्थानीय संवाददाताओं के समक्ष कहा कि समूचे प्रकरण की जांच की जा रही है, लेकिन पुलिस ने 2 नम्बर की रात ही फ़ैज़ल को नयी दिल्ली स्थित जामिया नगर के उनके आवास से गिरफ्तार कर लिया। बाक़ी 3 लोगों की खोज की जा रही है। फ़ैज़ल लम्बे समय से मेधा पाटकर और संदीप पांडेय जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय रहे हैं।

2 अक्टूबर को न्यूज़ 24 टीवी चैनल के जरिये इस प्रकरण को एक नया रूप देने की कोशिशें चलती रहीं। सारे दिन ये खबर चलाई गई की मंदिर और 'हिन्दू आस्थाओं का विनाश' करने वाले इन लोगों को मथुरा में जिस संगठन ने आमंत्रित किया, उसके संयोजक के तार 'पीएफ़आई' से जुड़े हुए हैं। वस्तुतः 'क़ौमी एकता संगठन' नामक उक्त संस्था के संयोजक मधुवन दत्त चतुर्वेदी की गिनती मथुरा के वरिष्ठ वकीलों में होती है। वे मथुरा में हाल ही में गिरफ्तार किये गए, मलयाली पत्रकार व 3 अन्य मुस्लिम युवकों के वक़ील होने के नाते कोर्ट में पैरवी कर रहे हैं। पुलिस ने इन युवकों को 'पीएफ़आई' से जुड़ा होने का आरोप लगाया है। चतुर्वेदी टीवी चैनल के इस मीडिया ट्रायल से बेहद आहत हैं। उन्होंने बताया कि 'ख़ुदाई खिदमतगार संस्था' सर्वधर्म समभाव रखने वाली संस्था है, जो धर्म के जरिये समाज में प्रेम के प्रसार का काम कर रही है। हमारा 'क़ौमी एकता मंच' भी लम्बे समय से कमोबेश समाज में ऐसे ही प्रेमपूर्ण मूल्यों को लोकप्रिय बनाने की दिशा में अग्रसर है, इसीलिए उनका नागरिक अभिनन्दन करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।' टीवी चैनल द्वारा पीएफआई से तार जुड़े होने के आरोप के बारे में पूछे जाने पर उनका कहना है कि 'अदालत में अभियुक्त की पैरोकारी करना मेरा पेशा है। उसका धर्म और राजनीति से कोई ताल्लुक़ नहीं है। यह आरोप शरारतपूर्ण और राजनीति से प्रेरित है।' देखना होगा कि सर्वधर्म समभाव और धार्मिक कठमुल्लावाद के संघर्ष में क़ानूनन जीत किसकी होती है। **-मीडिया दरबार**

सर्वधर्म समभावी होने के लिए कबीर बनना ज़रूरी है

❑ देवेंद्र आर्य

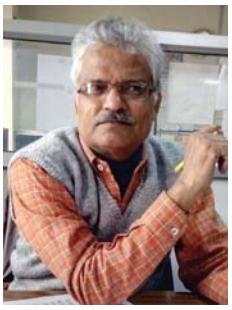

क्या किसी मस्जिद में किसी बुतपरस्त को कृष्ण की पूजा करने दी जा सकती है? यदि हां, तो वृंदावन में कन्हैया के चरणों में ख़ुदाई खिदमतगार फ़ैसल ख़ान का नमाज़ पढ़ना जायज़ है और यदि मुसल्लम ईमान वाले इसकी इजाज़त नहीं दे सकते तो मंदिर में नमाज़ नाजायज़ हरक़त है।

ऐसे समय में जब विश्व में धार्मिक उन्माद तेज़ होता जा रहा है और प्रगतिशील मक़बूल शायर तक फ़क़त मुसलमान या हिंदू के रूप में पेश किये जाने लगे हों, हमें कविता और शायरी के बाहर खड़े आस्थाओं के धार्मिक और सामाजिक यथार्थ को भूलना नहीं चाहिए। चुनावी रस्मों के बीच सद्भाव अगर खुरपेंच बनने लगे तो उससे तोबा की जानी चाहिए।

धार्मिक रूढ़ियों, अलगाव और अंध आस्थाओं से संघर्ष के लिए एक प्रखर बौद्धिक तैयारी की ज़रूरत होती है जो फिलहाल सिरे से ग़ायब है। ऐसी परिस्थितियों में बेशक सद्भाव के उद्देश्य से ही, यूं ही आग में घी डालते रहना और अपने हाथों अपना स्वाहा करते रहना सियासत के लिए मुफ़ीद है।

आज की परिस्थिति में यदि कोई हिंदू भी मस्जिद में जाकर यज्ञ करने लगे तो वह भी निंदनीय होगा। पहले वह समय बनाइए और आने दीजिए, जब इबादतगाहें हिंदू और मुसलमान में न बंटी हों। बेशक़ वह समय आएगा, जब कविता का सपना सच होगा कि 'वाइज़ शराब पीने दे मस्जिद में बैठ कर' और मंदिर में अजान हो। परंतु आज की स्थिति में फ़ैसल का कान्हा मंदिर में सर्व धर्म सद्भाव की मंशा से नमाज़ अता करना एक तरह की बचकानी हरक़त ही साबित होगा और जिस तरह की सामाजिक और प्रशासनिक प्रतिक्रिया हुई है, उससे लगता है कि इस तरह के गर्भपाती क़दम उठाकर फिलहाल हम साम्प्रदायिक हाथों में ट्रैप हो जाने और टूल बन जाने को अभिशप्त होते रहेंगे।

कहा गया है कि फ़ैसल अपने एक अन्य मुस्लिम और दो हिन्दू साथियों के साथ अपनी पंचकोसी सद्भावना यात्रा के क्रम में कान्हा मंदिर गए थे। वहां उन्होंने लोगों से धार्मिक एकता की बातें कीं और जोहर की नमाज़ का वक्त हो जाने पर बातचीत में शामिल मंदिर के युवा पुजारी, जो ईश्वर और ख़ुदा एक ही है, जैसी दार्शनिक बातों से सहमति व्यक्त कर रहे थे, उनके कहने पर (अथवा स्वीकृति देने पर) कान्हा की माटी पर बिना मुसल्ला बिछाए नमाज़ अता की। नमाज़ पढ़ते हुए फ़ैसल और उनके साथी की फोटो भी खींची (या खिंचवाई) गयी और जब सब कुछ सामान्य सा चलता रहा और इसकी कोई ख़बर नहीं ली गयी तो एक हफ्ते बाद उस फोटो को सोशल मीडिया पर डाला गया।

फोटो के वायरल होते ही जो होना था, हुआ। साम्प्रदायिकता की ज़मीन सींच कर वोट की फ़सल उगाने वालों को यह जानकारी ख़तरनाक लगी और स्वयंसेवी धार्मिकों के बयान आए कि कान्हा मंदिर में नमाज़ पढ़ कर उसे दूषित किया गया है। यह उकसावे की कार्रवाई है, जिसके लिए जिम्मेदार दोषी और वहां के पुजारी को दंडित किया जाए। पुजारी महोदय ने मंदिर परिसर में नमाज़ पढ़ने की अनुमति देने वाली बात से इंकार कर दिया और इस हरक़त की निंदा की। प्रशासन हरक़त में आया, एफ़आईआर दर्ज हुई, फ़ैसल दिल्ली में गिरफ्तार हुए और उन्हें चौदह दिन के लिए जेल भेज दिया गया। मुझ जैसे तमाम लोगों को, जिन्हें फ़ैसल के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, बाक़ायदा न्यूज चैनलों और सोशल मीडिया के माध्यम से इस चर्चा में जुड़ने का मौक़ मिला। क्या मक़सद यही था?

ख़ुदाई खिदमतगार संस्था के बारे में ऐतिहासिक तथ्य यह है कि सीमांत गांधी कहे जाने वाले चर्चित स्वतंत्रता संग्राम सेनानी अब्दुल गफ्फार खान ने यह संगठन बनाया था, जो लाल कुर्ती वालों के नाम से ख्यात था और जिसका काम बिना किसी धार्मिक दुराग्रह के विभाजन के समय प्रताड़ित, त्रस्त लोगों की मदद (सेवा) करना था। अब उसी संगठन को पुनर्जीवित किया गया है या उसी नाम से एक ग़ैर मज़हबी और आपसी सद्भावना का संदेश लोगों तक पहुंचाने के उद्देश्य से यह समरूप नया संगठन बनाया गया है। फ़ैसल और उन जैसे सामाजिक सौहार्द प्रेमी इस संगठन से जुड़े हैं। फ़ैसल के बारे में बताया जाता है कि वे किशोरावस्था से ही हिन्दू मुस्लिम एकता की भावना से जन्माष्टमी आदि आयोजित करते रहे हैं। उन्होंने विभिन्न धार्मिक ग्रंथों का पारायण किया है और सभी धर्मों की अच्छी बातों को सामने रखते हुए धार्मिक और मानवीय एकता की आवश्यकता पर बल देते हैं और इसी उद्देश्य से वे पंचकोसी यात्रा करते हुए मथुरा पहुंचे थे।

ऐसे में उनके और उनके संगठन के उद्देश्य से किसी को असहमति नहीं हो सकती, न ही उसके ज़मीनी रूप देने के प्रयास से असहमत हुआ जा सकता है। परंतु वर्तमान परिस्थितियों के मद्देनज़र यह बहस ज़रूर खड़ी हो जाती है कि मंदिर में नमाज़ अता करने का सद्भाव पूर्ण कदम क्या गुल खिला सकता है। इस घटना के बाद कुछ हिन्दुओं के दरगाह और मस्जिद में हनुमान चालीसा पढ़ने और उसका वीडियो वायरल करने की ख़बरें सामने आई हैं। ग़नीमत है कि अभी तक इस्लाम समर्थकों ने इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है, जो फ्रांस में पैगंबर साहब के कार्टून बनाए जाने को लेकर ख़फ़ा हैं और अधिकांश ने वहां हुई खुंरेज़ी से सहमति व्यक्त की है। एक सवाल यह भी है कि क्या फ़ैसल वास्तव में पांचों वक्त के पाबंद नमाज़ी हैं? और यदि उनका अक़ीदा इस्लामी पहचान और फ़र्ज में है तो उनका बुतपरस्त लोगों की इबादतगाह में नमाज़ अता करना कितना जायज़ है? इस्लाम कहता है कि बहुदेववादी मुशरिक हैं और किसी और को अल्लाह के समकक्ष घोषित करना शिर्क है।

इस घटना के बारे में भी यही बताया गया कि नमाज़ पढ़ने की अनुमति वहां के पुजारी ने ही दी थी। यदि यह सच है तो यहां तक धर्म व्यक्तिगत था, पर जैसे ही वह सांस्थानिक हुआ, पुजारी मुकर गया और हफ्ते भर पहले की घटना इस रूप में सामने आई। सद्भाव की

तमाम मिसालें हैं, हिन्दू मुसलमान दोनों तरफ़ से हैं, पर अभी शायद सांप्रदायिकता से संघर्ष की सामूहिक मानसिकता बहुमत में नहीं आ सकी है। हमें अपनी कार्रवाई यहीं केंद्रित करनी चाहिए। समय-विवेक की अनदेखी और हड़बड़ी ठीक नहीं। साम्प्रदायिकता से संघर्ष के और भी बेहतर तरीक़े से हो सकते हैं। हर प्रगतिशील व्यक्ति का सपना वही है, जो ख़ुदाई खिदमतगारों का है, परंतु सोचने की बात यह है कि क्या यह सपना धरती पर सांस्थानिक धर्मों के रहते सम्भव है?

मैं स्वयं फ़ैसल के साथ खड़ा हूं और रहूंगा और उनकी भावना की भी तरफ़दारी करूंगा मगर साम्प्रदायिक सत्ता की कूटनीति और उसके आने वाले परिणाम पर उनके या उनकी संस्था के बिना सोचे समझे उठाये गये इस कदम से असहमति व्यक्त करूंगा। समय-विवेक की अवहेलना हमें क्षति पहुंचाती है। हमें तय करना चाहिए कि हमारी पहलकदमी तमाम श्री श्रीयों की ही तरह होगी या उनसे अलग और कुछ। सौहार्द के नाटकों से होने वाली कमाई पर हमें नज़र रखनी चाहिए और उन्हीं की कतार में खड़े होने की छवि के प्रति सतर्क रहना चाहिए। मत भूलिए कि हमारे संघर्ष की ज़मीन दूसरी है।

कबीर बनने के लिए निरीश्वरवादी बनना ज़रूरी हो या न हो, कम्युनिस्ट (सर्वधर्म समभावी प्रगतिशील) होने के लिए कबीर बनना बेशक ज़रूरी है। और कबीर के लिए धार्मिक पाखंड की खिल्ली उड़ाने और मानव के एक होने का संदेश देने के लिए मंदिर या मस्जिद जाने की ज़रूरत नहीं थी। कबीर धर्म को रोटी से जोड़ने वाले संत थे। मंदिर मस्जिद वाले या तो उसके खिलाफ थे या स्वयं उनके पास आकर उनकी तक़रीर सुनते थे। भूलना नहीं चाहिए कि सत्ता समर्थित धार्मिक कीचड़ में केवल कमल खिल सकता है, गुलाब नहीं। हम कमल और गुलाब के अंतर को समझते हैं और यह भी जानते हैं कि धार्मिक दलदल में युद्ध करने का बेहतर शिल्प एक ख़ास विचारधारा के लोग ही जानते हैं। तो क्यों हम अपनी आर्थिक, सामाजिक परिवर्तन आधारित सियासत (सद्भाव भी एक सियासत है) छोड़ कर धार्मिक दलदल में जाएं? ❑

प्रसंगवश

हसरत मोहानी
गंगा जमुनी तहज़ीब का इंक़लाबी शायर

❑ शाहीन अंसारी

बहुत सारे हिंदुस्तानी शायर ऐसे हुए हैं, जिनकी क़लम ने अपनी ताकत पर भारतीयों को अंग्रेज़ों के खिलाफ लड़ने के लिए उत्साहित किया है मगर आज हम जिस आजादी के दीवाने की बात कर रहे हैं, वह शायर होने के साथ-साथ एक पत्रकार, राजनीतिज्ञ, स्वतंत्रता सेनानी और साझी विरासत के वाहक भी रहे।

शायरी का शौक रखने वाले मोहानी ने उस्ताद तसलीम लखनवी और नसीम देहलवी से शायरी कहना सीखा था। उर्दू शायरी में हसरत से पहले औरतों को ऊंचा मकाम हासिल नहीं था। आज की शायरी में औरत को जो हमक़दम और दोस्त के रूप में देखा जाता है, वह कहीं न कहीं हसरत मोहानी की कोशिश का ही नतीजा है।

अपनी गज़लों में उन्होंने रूमानियत के साथ-साथ समाज, इतिहास और सत्ता के बारे में भी काफी कुछ लिखा है। जिंदगी की खूबसूरती के साथ-साथ आज़ादी के जज्बे की जो झलक उनकी गज़लों में मिलती है, वह और कहीं नहीं मिलती। उन्हें प्रगतिशील ग़ज़लों का प्रवर्तक कहा जा सकता है। हसरत ने अपना सारा जीवन शायरी करने तथा आज़ादी के आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में ही बिताया।

मौलाना हसरत मोहानी हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। मौलाना के मुताबिक उनके यहां इस्लाम के बुज़ुर्गों के अलावा जिनका नाम बार-बार आया है, वह नाम है 'श्रीकृष्ण' का। मौलाना हसरत मोहानी ने श्रीकृष्ण पर अवधी और उर्दू दोनों में रचनाएं की हैं। आजादी की रवायत के मुताबिक वे अवध की तहजीब के प्रतिनिधि कवि हैं और रसखान के बाद कृष्ण पर फिदा एक अज़ीम शख्सियत।

1919 के ख़िलाफ़त आंदोलन में उन्होंने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। उनकी पत्नी निशातुन्निसा बेगम, जो हमेशा परदे में रहती थीं, ने भी अपने पति के साथ आज़ादी की लड़ाई में हमकदम होकर जिम्मेदारी निभाई। मौलाना हसरत मोहानी आज़ादी की लड़ाई में इस तरह घुल मिल गये थे कि उनके लिए इस राह में मिलने वाले दुख-दर्द, राहत-खुशी एक जैसे थे। वे हर तरह के हालात में अपने आप को खुश रखना जानते थे। उन्होंने बहुत थोड़ी सी आमदनी से और कभी कभी बिना आमदनी के भी गुज़ारा किया। उनकी सबसे बड़ी ख़ासियत यह थी कि वे अंजाम की फिक्र किये बिना जो सच समझते थे, कह देते थे। सच की क़ीमत पर वह कोई समझौता नहीं करते थे।

1921 में 'इन्क़लाब ज़िंदाबाद' का नारा गढ़ने वाले हसरत मोहानी ही थे। इस नारे को बाद में भगत सिंह ने अपनाकर मोहानी साहब को मशहूर कर दिया। 1921 में कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आज भी जब कहीं गैर बराबरी और सत्ता के खिलाफ कोई विरोध या आंदोलन चलता है तो 'इंक़लाब जिन्दाबाद' का नारा उसका खास हिस्सा होता है। हमारे देश की कोई भी सियासी पार्टी या कोई जन संगठन अपनी मांगों के लिए प्रदर्शन करते हैं तो इस नारे का इस्तेमाल आन्दोलन में जान फूंक देता है। आज़ादी की लड़ाई के दौरान यह नारा उस लड़ाई की जान हुआ करता था और जब भी, जहां भी यह नारा बुलन्द होता था, आज़ादी के दीवानों में जोश भर देता था।

भारत की आज़ादी में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने वाले हिन्दुस्तानी रहनुमाओं और मुजाहिदों की फेहरिस्त में मौलाना हसरत मोहानी का नाम सरे फेहरिस्त शामिल है। उन्होंने इंक़लाब जिन्दाबाद का नारा देने के अलावा 'टोटल फ्रीडम' यानी 'पूर्ण स्वराज्य' यानी भारत के लिए पूरी तरह से आज़ादी की मांग की हिमायत की थी। वे बाल गंगाधर तिलक और डॉ भीमराव अंबेडकर के क़रीबी दोस्त थे। डॉ भीमराव आंबेडकर को वे सबसे अधिक सामाजिक सम्मान देते थे, यहां तक कि पवित्र रमज़ान में भी बाबा साहब मौलाना के मेहमान होते थे।1946 में जब भारतीय संविधान सभा का गठन हुआ तो उन्हें उत्तर प्रदेश राज्य से संविधान सभा का महत्वपूर्ण सदस्य चुना गया। संविधान निर्माण के बाद जब इस पर दस्तखत करने की बारी आई तो उन्होंने यह कहते हुए इनकार कर दिया कि यह मजदूरों और किसानों के हक़ की पूरी रहनुमाई नही करता। किसानों और मजदूरों के हित में यह फैसला लेने वाले वे अकेले सदस्य थे।

भारत विभाजन का उन्होंने विरोध किया और अपने भारतीय होने पर नाज़ किया।हिन्दू मुस्लिम एकता की विरासत को सँजोये इस महान व्यक्तित्व ने 13 मई 1951 को दुनिया को अलविदा कह दिया। आज हसरत मोहानी मौजूद नहीं हैं, पर उनकी विरासत हमारे साथ है। उनकी रवायत को आगे बढ़ाना ही उनके लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी। आइये, आप और हम सब उनके रास्ते पर चलकर हिंदुस्तान की साझी विरासत को सुरक्षित रखें।

ग़म-ए-आरज़ू का 'हसरत' सबब और क्या बताऊँ,
मिरी हिम्मतों की पस्ती मिरे शौक़ की बुलंदी। ❑

अमेरिकी चुनाव में मतदाताओं का संदेश

❑ डेविड ब्रुक्स

मैं खुद को जोर से फटकार लगाना चाहता हूं। मैं चाहता था कि डोनाल्ड ट्रंप 10 पॉइंट्स से हारें। लेकिन चुनाव हमें शिक्षित भी करते हैं। मतदाता हमेशा बुद्धिमान नहीं होते, लेकिन वे आम तौर पर चीजों को समझते हैं। वे अपने जीवन के बारे में हमारी दी गयी सूचनाओं से ज्यादा जानते हैं। और चुनाव नतीजों में वे अक्सर महत्त्वपूर्ण संदेश देते हैं। पॉपुलर वोटों में जो बाइडन की जीत निश्चित करने के जरिये ज्यादातर अमेरिकियों ने हमें जो संदेश दिया है, वह यह है कि ट्रंप अस्वीकार्य हैं। हम एक विभाजित और भेदभाव वाले देश में रहते हैं, लेकिन यह तथ्य है कि 2016 की तुलना में कई लाख अधिक श्वेत मतदाताओं ने डेमोक्रेटिक पार्टी को वोट दिया। अनेक लोगों ने एक ऐसे राष्ट्रपति को हटाने के लिए, जो लोकतांत्रिक अमेरिका की बुनियाद के ही विरुद्ध है, पक्षपाती राजनीति के खिलाफ मतदान किया। यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है।

मतदाताओं ने जो दूसरा संदेश दिया है, वह यह है कि चर्च को राज्य से अलग करो। हमारे यहां राजनीतिक ध्रुवीकरण का लंबा इतिहास है, जो आगे भी जारी रहने वाला है। लेकिन पिछले कुछ साल से ध्रुवीकरण ने इतना भीषण रूप ले लिया है कि धार्मिक युद्ध की आशंका पैदा होने लगी है। मतदाताओं ने दोनों ही राजनीतिक पार्टियों को बताया है कि अगर वोट पाना है, तो वास्तविक मुद्दों के इर्द-गिर्द रहें। और अगर आप धर्म के आधार पर हमें लड़ाना चाहते हैं, तो कहीं और जायें। उन्होंने रिपब्लिकन्स को खासकर बताया कि ट्रंप के सनकी नारे 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' के बगैर आप ज्यादा ताकतवर हैं। सच तो यह है कि चुनावी नजीजा ट्रंप की तुलना में रिपब्लिकन पार्टी के लिए कहीं बेहतर रहा है। ट्रंप भले ही हार गये हों, लेकिन रिपब्लिकन पार्टी का राज्यों में शानदार प्रदर्शन रहा है। इसका मतलब यह है कि कम से कम अगले 10 साल तक अमेरिकी राजनीति में रिपब्लिकन का ही वर्चस्व रहेगा।

इस लिहाज से ग्रैंड ओल्ड पार्टी यानी रिपब्लिकन का भविष्य एक बहुनस्लीय कामकाजी वर्ग की पार्टी के रूप में उभर रहा है। रिपब्लिकन को लैटिन अमेरिकी, अफ्रीकी अमेरिकी ओर मुस्लिम मतदाताओं के बीच आश्चर्यजनक रूप से समर्थन मिला है। ट्रंप को अश्वेतों के जितने वोट मिले हैं, उतना पिछले साठ साल में किसी रिपब्लिकन उम्मीदवार को नहीं मिला है। लेकिन इसका श्रेय नस्लवादी ट्रंप

को नहीं, बल्कि उनकी पार्टी को जाता है, जिसने छोटे उद्योग और आर्थिक प्रगति को लगातार सहारा दिया।

ऐसे ही मतदाताओं ने डेमोक्रेटिक पार्टी को बताया है कि अगर उसने अपनी नीतियों के बारे में बेहतर ढंग से बताया होता, तो उसका प्रदर्शन बेहतर होता। अगर डेमोक्रेटिक पार्टी के सामने बेहद शानदार तरीके से जीत हासिल करने का कोई अवसर था, तो वह इसी बार था, क्योंकि उसकी लड़ाई एक अनैतिक और चरम अयोग्य व्यक्ति के खिलाफ थी। लेकिन डेमोक्रेटिक पार्टी यह अवसर भलीभांति भुना पाने में नाकाम रही। इसमें दोष सिर्फ उसकी नीतियों का नहीं है। बाइडन की नीतियां बेहद लोकप्रिय रही हैं। लेकिन उनकी पार्टी ने जाने-अनजाने एक दीवार खड़ी कर दी, जिस कारण आधा अमेरिका उनकी पहुंच से बाहर रह गया। अमेरिका की राजनीति प्रगतिशील इसलिए है, क्योंकि इसने स्थानीयता के बजाय विविधता को तरजीह दी। लेकिन मतदाताओं को इस बार विभाजित अमेरिका दिखा, जिसमें एक तरफ डेमोक्रेट्स विविधता की बातें करते रहे, दूसरी ओर रिपब्लिकन्स नस्लवाद पर जोर देते दिखे। इस दौरान घटी घटनाओं से भी चीजें बदलीं। चुनाव दर चुनाव डेमोक्रेटिक पार्टी उभरने में नाकाम रही। यही नहीं, पार्टी ने इस बीच अमेरिका में हुई विविध घटनाओं का सरलीकरण किया। वह यह भांप पाने में नाकाम रही है। इसके अलावा पार्टी अपनी पीठ खुद थपथपाती रही। मतदाताओं ने हमें ऐसी राजनीतिक व्यवस्था सौंपी है, जिसका नेतृत्व संभवतः जो बाइडन, नैन्सी पेलोसी और मिच मैककोलान करेंगे। हमारे सामने दो ऐसी पार्टियां हैं, जिनका आधार कामकाजी वर्ग है। ऐसे में, शायद अगले कुछ साल इस प्रतिद्वंद्विता में बीतें कि अमेरिका के लिए कौन बेहतर है।

क्या सरकार के विभाजित होने से गतिरोध पैदा हो सकता है? शायद। जैसे कि मैककोलान रिपब्लिकन के हित में कदम उठायेंगे। हालांकि मैं इस पर निश्चित नहीं हूं। सांस्कृतिक मामलों में अमेरिका बदतर तरीके से विभाजित है, लेकिन आर्थिक मुद्दों पर वैसा विभाजन नहीं है। लोकप्रियतावाद ने रिपब्लिकन समर्थकों में सरकार-विरोधी भावना मजबूत की और मार्को रुबियो, जॉश हॉव्ले और टॉम कॉटन जैसे सीनेटरों की सोच को मजबूती मिली, जिनका मानना है कि सरकार को उद्योग क्षेत्र से और जुड़ना चाहिए, श्रमिकों के प्रशिक्षण पर जोर देना चाहिए। इन्फ्रास्ट्रक्चर बैंक गठित करना चाहिए, वेज सब्सिडी देनी चाहिए, आदि-आदि। मतदाताओं ने हमें फिर से याद दिलाया है कि दूसरे पक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमें एक दूसरे के साथ ही जीना होगा। अपनी नैतिक सोच में फर्क को हमें किताबों, फिल्मों और जुलूसों द्वारा दूर करना चाहिए, राजनीतिक जोर-जबर्दस्ती से नहीं। ❑

कठिन समय में हवा का रुख मोड़ने वाले बाइडन

❑ कल्लोल चक्रवर्ती

वर्ष 1972 में सीनेट की लिए पहली बार चुने गये उनतीस साल के जो बाइडन अमेरिकी इतिहास में दूसरे सबसे युवा सीनेटर थे। वर्ष 2020 के चुनाव में विजेता हुए करीब अठहत्तर साल के बाइडन अमेरिका के सबसे उम्रदराज राष्ट्रपति होंगे। अमेरिकी चुनाव के इतिहास में बाइडन को सबसे अधिक वोट मिले हैं। जबकि उनका चुनाव अभियान बेहद सामान्य तरीके से शुरू हुआ था। बल्कि एक समय तो उनकी उम्मीद भी टूट गयी थी और वह मान बैठे थे कि व्हाइट हाउस में जाने का आखिरी अवसर उनके हाथ से निकल चुका है। इससे पहले वह दो बार 1988 और 2008 में डेमोक्रेटिक पार्टी के उम्मीदवार थे। पहली बार तब उन्हें अपना नामांकन वापस लेना पड़ा था, जब उन पर ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेता नील किनॉक का भाषण चुराने का आरोप लगा था। और दूसरी बार बेहद कम समर्थन मिलने के कारण उन्हें अपना नाम वापस लेना पड़ा था।

छह बार सीनेटर और अमेरिका के 47वें उप-राष्ट्रपति रह चुके बाइडन मध्यवर्गीय परिवार से आते हैं। बचपन में उन्हें बोलने में समस्या थी और बहुत मेहनत से उन्होंने वक्तृत्व कला सीखी। हालांकि अपनी बेतुकी बातों के कारण अब भी वह कई बार उसी तरह मजाक के पात्र बनते हैं, जिस तरह स्कूल में शिक्षकों और सहपाठियों के निशाने पर होते थे। बाइडन की राजनीतिक यात्रा उनकी पारिवारिक त्रासदियों के कारण बाधित होती रही है। वर्ष 1972 में सीनेट के लिए चुने जाने के कुछ ही दिनों बाद कार दुर्घटना में उनकी पत्नी और बेटी की मृत्यु हो गयी थी। तब उन्होंने अस्पताल के उस कमरे से शपथ ली थी, जिसमें उनके घायल दो छोटे बेटों का इलाज चल रहा था। ऐसे ही 2015 में बेटे की ब्रेन कैंसर से मौत के कारण अगले साल के राष्ट्रपति चुनाव में उनकी महत्त्वाकांक्षा को धक्का लगा। एक जर्नल में उन्होंने लिखा था, 'मैं कभी अपने जीवन की योजना नहीं बना पाया। जब भी मैं ऐसा करने की कोशिश करता हूं, मेरा व्यक्तिगत जीवन इसमें खलल डालता है।

करीब पचास साल लंबी बाइडन की राजनीतिक यात्रा तमाम उतार-चढ़ावों से भरी रही है। सीनेटर के अपने शुरुआती दौर में एक महिला द्वारा यौन शोषण की शिकायत की सुनवाई करते हुए आरोपी को छोड़ देने की ग्लानि से बहुत बाद तक वह नहीं उबर पाये। महिलाओं के प्रति उनका रवैया 1994 के वायलेंस एगेंस्ट वुमैन ऐक्ट से पता चलता है,

जिसे पारित कराने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। मगर उन पर महिलाओं से नजदीकी जताने के आरोप लगते रहते हैं। इस बार भी चुनाव में उन पर महिला मतदाताओं से अनावश्यक नजदीकी जताने के आरोप लगे। जबकि उनकी नस्लवाद विरोधी छवि का प्रमाण यह है कि उप-राष्ट्रपति के आठ साल के दौरान उन्होंने अश्वेत ओबामा का अनुगामी बनना पसंद किया और इस बार राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी बनने पर एक अश्वेत कमला हैरिस को उप-राष्ट्रपति प्रत्याशी के तौर पर चुना।

आक्रामक विदेश नीति में बाइडन का यकीन नहीं है। वियतनाम से अमेरिकी फौज की वापसी का समर्थन करने वाले बाइडन ने बुश द्वारा सद्दाम हुसैन के इराक के खिलाफ बल प्रयोग का विरोध किया था। ओसामा बिन लादेन के खिलाफ चलाये गये जिस अभियान ने ओबामा की मजबूत छवि बनायी, और जिस ऑपरेशन को ओबामा ने लाइव देखा था, उस अभियान तक में उप राष्ट्रपति बाइडन की सहमति नहीं थी। ओबामा के राष्ट्रपति काल में अमेरिका की विदेश नीति बाइडन पर ही निर्भर थी। वर्ष 2012 में उप-राष्ट्रपति बाइडन तब सुर्खियों में थे, जब उन्होंने घोषित नीति से अलग हटते हुए कहा था कि समलैंगिक विवाह पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। मजबूरन ओबामा को भी इस पर हामी भरनी पड़ी थी।

कोरोना महामारी के बीच बाइडन ने व्यापक और मुफ्त जांच तथा मुफ्त वैक्सीन की बात कही। वह बार-बार कह चुके हैं कि अपनी व्यक्तिगत त्रासदियों के कारण वह स्वास्थ्य सेवा को अपनी प्राथमिकता में सबसे ऊपर रखते हैं। पर वह सबके लिए मुफ्त स्वास्थ्य सेवा के पक्ष में नहीं हैं। बाइडन अमेरिकी राजनीति में द्विदलीय व्यवस्था के समर्थक हैं। वैश्विक परिदृश्य में अमेरिका की नेतृत्वकारी भूमिका पर बल देने के बावजूद वह चीन से आक्रामक रिश्ता रखने के हिमायती नहीं हैं। राष्ट्रपति के नामांकन के दौरान उन्होंने यमन में चल रहे गृहयुद्ध में सऊदी अरब को मिल रहे अमेरिकी समर्थन का विरोध किया था।

भारत से उनके भावुक रिश्ते की एक कहानी है। वर्ष 1972 में सीनेट का पहला चुनाव जीतने पर मुंबई के किन्हीं बाइडन ने उन्हें बधाई संदेश भेजा था। वह उस पत्र का जवाब नहीं दे पाये, लेकिन जुलाई 2013 में भारत आने पर बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज में दिये भाषण में उन्होंने इसका जिक्र किया था कि वह उस शख्स से मिलना चाहते थे, जो उनका रिश्तेदार हो सकता था। चुनाव से पहले बाइडन ने कहा था कि बराक ओबामा की परंपरा को जारी रखते हुए वह इस चुनौतीपूर्ण समय में अमेरिका को एकजुट करने का काम करेंगे। उम्मीद करनी चाहिए कि एक भयानक और अनिश्चित दुनिया में अमेरिका का नेतृत्व एक अनुभवी राजनेता के हाथों में है। ❑

गांधी जी का वह जादुई स्पर्श

❑ डॉ. सरिता

गांधीजी ने इलाहाबाद स्टेशन पर डॉ. सुचेत गोइन्दी के सिर पर ऐसा जादुई हाथ रखा कि उनका जीवन ही बदल गया। वह आजीवन ब्रह्मचर्य और सत्य-अहिंसा का पालन करते हुए समाज को सचेत करने में लगी रहीं। **- सं.**

गांधी से पहली मुलाकात : सुचेत गोइंदी के शब्दों में

''सन् सैंतालिस में सितम्बर का एक दिन। सुबह जंक्शन शांत था। घर के मेरे कमरे में मेरा और सन्तोष दीदी का मन कुलांचे मार रहा था। शहर में काफी हलचल थी, बापू को इलाहाबाद आना था। कुछ क्षणों के लिए हमें भी लगा कि वह कैसे होंगे? वैसे मेरे पिता जी ने जो कुछ भी बताया था, मेरे हृदय में वैसी ही छवि बनी हुई थी। मैं क्रास्थवेट कालेज में पाँचवीं क्लास की छात्रा थीं। यही कोई 11-12 साल की उम्र। हमारी दीदी भी गांधी के सान्निध्य में आ चुकी थीं। पिता भगवान सिंह गोइन्दी गांधीजी के आह्वान पर 1921 में उच्च शासकीय सेवा से त्यागपत्र देकर स्वतंत्रता संग्राम में तन-मन से जुट गये थे। वे गांधी जी के बहुत प्रिय थे। माता अनंत कौर समेत हमारा पूरा परिवार गांधी जी के आदर्शों पर चल पड़ा था। चम्पारन से दिल्ली जाने की सूचना महात्मा गांधी ने पिता जी को पहले से ही दे रखी थी। गांधी जी ने पिता जी से यह भी कह रखा था कि अपने छोटे बच्चों को भी साथ में लाना। मैं भी बच्चों को देख लूंगा।

गांधी जी को जिस दिन इलाहाबाद पहुंचना था, वह सोमवार का दिन था। गांधी जी सोमवार को मौन व्रत रखा करते थे। पिता जी मुझे और दीदी को साथ लेकर रेलवे स्टेशन पहुंचे। गांधी जी की एक झलक पाने के लिए काफी भीड़ जमा थी। स्टेशन पर एक खास बात देखने को मिली कि इतने लोगों के होने के बावजूद धक्कामुक्की नहीं थी।

दोपहर के बाद ट्रेन आकर रुकी। पिता जी हम दोनों को लेकर उस बोगी में पहुंचे, जहां गांधी जी बैठे थे। पिता जी ने परिचय कराया। गांधी जी कमल दीदी को तो पहले से ही जानते थे। कुछ ऐसे क्षण होते हैं, जिन्हें भूला नहीं जा सकता। महात्मा नाम तो सुना था, लेकिन वे इस नाम से भी बड़े दिखे। भव्य ललाट। तन पर सिर्फ धोती, दिव्य चेहरा। ट्रेन की सामान्य बोगी में गुमसुम बैठे थे। दुनिया की इतनी बड़ी हस्ती मेरे सामने थी। मैं खामोश थी। उन्हें महसूस कर रही थी.

गांधी जी ने जैसे ही अपना हाथ मेरे सिर पर रखा, ऐसा लगा कि जैसे कोई पुंज आत्मा अंदर प्रवेश कर गयी हो और सारा अंधकार मिट गया हो। मन परिवर्तित हो गया। देशप्रेम का समर्पण

जगा। भावनाएँ नहीं रुकीं और आंखें छलछला आईं। ट्रेन काफी देर तक रुकी रही। मैं वहां से लौटी तो जरूर, लेकिन खाली हाथ नहीं, गांधी से मिलने के बाद गांधी के आदर्शों पर चलने का संकल्प लेकर फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपना कुछ नहीं रहा। सोना, खाना, जागना, पढ़ाई-लिखाई सब देश के लिए। पढ़ाई के दौरान ही गांधी के सपने को पूरा करने की राह पकड़ ली।

वैसे इसके पहले हमारे पिता भगवान सिंह प्रतापगढ़ में नौकरी छोड़कर गांधी का साथ पकड़ चुके थे। परिवार में पहले से ही गांधी को सुनती आ रही थी, लेकिन मिलने के बाद उसी रास्ते पर आज तक चल रही हूं।''

वे निर्भीकता की मिसाल

उन्नीस सौ छिहत्तर में उच्च शिक्षा विभाग ने इनके अद्भुत साहस और योग्यता को देखते हुए रामपुर में राजकीय महिला महाविद्यालय में प्राचार्य की बागडोर सौंपी। चौदह साल तक इस महाविद्यालय में बड़े ही मनोयोग से उत्तरदायित्व को संभाला। एक अपरिचित स्थान एवम् अपरिचित वातावरण में बालिकाओं के अधूरे सपनों को पूरा किया। इस महाविद्यालय को अनुशासन, स्नेह एवम् ज्ञान की जलधारा से सिंचित किया। इसके पहले ज्ञानपुर डिग्री कालेज में लड़कों ने जब हंगामा किया तो निर्भीकता के साथ उन लड़कों के खिलाफ गवाही देने अकेले कचहरी पहुंच गई थीं। दादा धर्माधिकारी के सचेत करने पर भी, उनकी ही नहीं, कभी किसी की नहीं सुनी।

चुनौतियों को स्वीकारने की अद्भुत क्षमता

आगे चलकर सुचेत गोइन्दी ने बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। समाज में उपेक्षित वेश्याओं की लड़कियों की भी गहरी चिन्ता रही। दिल्ली की एक सामाजिक संस्था थी। उसी संस्था की एक सदस्या से उनकी मुलाकात इलाहाबाद के कल्याणी देवी में हुई, जिन्होंने कहा कि वेश्याओं की बालिकाओं को पढ़ाना चाहती हूं।

सुचेत जी ने भी दिलचस्पी ली और चल पड़ीं ऐसी गलियों की ओर, जहां भले पुरुष भी जाने से थर्राते हैं। कहने लगीं, हमने देखा कि पाँच साल की लड़कियों का अपहरण कर उन्हें वेश्या बना दिया जाता है। सच, नींद नहीं आई। उनको पढ़ाने हेतु विद्यालय के लिए डीएवी एवम् कल्याणी देवी में प्रयास किया। सफल भी रहीं। स्थानीय लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि ऐसे बच्चों को हमारे यहां पढ़ाने से बदनामी होगी। विरोध किये जाने पर लोकसेवकों की इमारत में पढ़ाया जाने लगा। कुछ दिन लड़कियां आतीं और कुछ दिन न आतीं। जब बुलाने जातीं, तो कहने लगतीं, 'हमारी बेटी पूजा में गई है, कुछ दिन में आ जायेगी।' कब आयेगी? उत्तर न मिलता। आर्थिक तंगी और पेशेवर होने के कारण उनके माता-पिता लड़कियों को पढ़ाने में सहयोग नही दे पाये।

वे कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट की उप्र प्रान्तीय सलाहकार की समिति के सदस्य के रूप में आज भी गांधी के सपने पूरे करने के काम में संलग्न हैं। इलाहाबाद के आजादी बचाओ आन्दोलन में भी काफी समय तक सक्रिय रहीं। उन्होंने 1995 में उप्र शिक्षा सेवा आयोग में पुनर्नियुक्ति होने पर भी नौकरी नहीं की।

दलित उत्थान के लिए एक लाख रूपये जीपीएफ से देकर उन्होंने सदियापुर में कमल गोइन्दी नेशनल स्कूल खोला। वे 'अनन्त शिक्षा निकेतन' के साथ ही आश्रम जमुनीपुर कोटवा में आज भी मार्गदर्शक की भूमिका में हैं।

गोइन्दी जी लगातार पच्चीस वर्षों से समाज में फैल रहे सांस्कृतिक प्रदूषण पर बोलकर लोगों को सचेत करती आ रही हैं। वे कहती हैं - 'आजादी के सात दशक बीत गये। देश को कितनी बार हिचकोले लेते देख रही हूं। बापू ने जिस भारत की कल्पना की थी, उसी को आज तक ढूंढ रही हूं। सच, सिर पर गांधी का हाथ रखना मानों कोई पुंज आत्मा का प्रवेश था, जिसने हमें सत्य, ईमानदारी और अहिंसा के रास्ते पर चलने की सीख दी है।'

-मीडिया स्वराज

संविधान दिवस 26 नवंबर पर

जिस संविधान की कसमें खाते हैं, उसी को मिटाने की बात करते हैं

❑ सुभाष गाताडे

भारत का संविधान (जिसका निर्माण भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक मुक्ति के महान संघर्ष में मुब्तिला रहे अपने वक्त की अजीम शख्सियतों ने किया) वह बुनियाद है, जिस पर भारत के जनतंत्र की समूची इमारत बुलंदी के साथ खड़ी है और जिसमें हमारे आधुनिक गणतंत्र के व्यापक एवम समावेशी विचारों को तवज्जो दी गई है. यह अलग बात है कि उसको लेकर अपनी बेआरामी छिपा पाना, हिंदुत्व वर्चस्ववादियों के लिए हमेशा ही मुश्किल साबित होता रहता है और जो उसे खोखला एवं कमजोर करने के लिए वाचा एवं कर्मणा के स्तर पर आए दिन जुटे रहते हैं.

केंद्र के एक कबीना मंत्री अनंत कुमार हेगड़े ने कभी ब्राहमण युवा परिषद के सम्मेलन में खुल कर कहा था कि वह संविधान बदलने के इरादे से सत्ता में आए हैं, उन्होंने संविधान के बुनियादी मूल्य धर्मनिरपेक्षता पर यकीन रखने वालों का मजाक उड़ाया और लोगों को अपनी पहचान को जाति एवं धर्म के रूप में प्रस्तुत करने का आवाहन किया, तब सत्ताधारी पार्टी की तरफ से मौन ओढ़ लिया था. यह बात ज्यादा पुरानी नहीं है. मुल्क की बागडोर संभालते वक्त 'संविधान को सबसे पवित्र किताब' कहने वाले तथा अपने आप को 'आंबेडकर का शिष्य' घोषित करने वाले प्रधानमंत्री ने भी तब खामोशी बरतना ही मुनासिब समझा था.

यह अलग बात है कि जनाब हेगड़े के इस प्रलाप की जबरदस्त निंदा हुई। उसे जब अपनी साझी, विविधतापूर्ण और धर्मनिरपेक्ष पहचान पर हमला बताया गया और तमाम सामाजिक व राजनीतिक संगठनों की तरफ से उनके खिलाफ कार्रवाई की मांग उठी, तब सत्ताधारी पार्टी की तरफ से दबी जुबां में कहा गया कि वह हेगड़े के बयान से अपने आप को अलग करती है और वह उनका 'व्यक्तिगत विचार' है.

अगर हम संतुलित निगाहों से देखें तो यह कोई पहली मर्तबा नहीं है कि संघ परिवार/हिंदुत्व ब्रिगेड से ताल्लुक रखने वाले लोगों में से किसी ने ऐसी बात की हो. संघ के मौजूदा सुप्रीमो मोहन भागवत ने भी हैदराबाद में आयोजित अखिल भारतीय अधिवक्ता परिषद के सम्मेलन को संबोधित करते हुए 'मुल्क की मूल्य प्रणाली के अनुकूल संविधान एवं न्यायविधान में बदलाव की हिमायत की थी.

कोई भी महीना नहीं गुजरता, जब हम ऐसे वक्तव्यों, बयानों से रूबरू न होते हों, जहां भारतीय संविधान को 'पश्चिमी प्रभावों' से युक्त होने के नाम पर तथा 'भारतीय (कहने का तात्पर्य हिंदू) मूल्यों की उपेक्षा करने के लिए' विवादों के घेरे में न लाया जाता हो.

तयशुदा बात है कि ऐसे विवादास्पद कहे जाने वाले बयानों से, वह बात स्पष्ट नहीं होती कि किस चुपचाप तरीके से हुकूमत में बैठी जमात के लोग संवैधानिक सिद्धांतों को तिलांजलि देते या उन्हें अंदर से खोखला कर रहे होते हैं और किस तरह समूचे मुल्क पर अपनी बहुसंख्यकवादी निरंकुशता की विचारधारा को थोप रहे होते हैं.

धार्मिक समारोहों में सेना की सहभागिता की परिघटना से भी हम रूबरू हो रहे हैं, जिसने उसके धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को बुरी तरह प्रभावित किया है. याद रहे धर्मनिरपेक्षता संविधान के बुनियादी मूल्य में शुमार है. इतना ही नहीं प्रस्तावित नागरिकता बिल में भी ऐसे प्रावधान शामिल हैं, जिनके तहत धार्मिक उत्पीड़न से बचने के नाम पर पड़ोसी मुल्कों के गैरमुस्लिम शरणार्थियों को आसानी से नागरिकता प्रदान की जा सके. इजरायल के तर्ज पर भारत के संविधान में बदलावों को अंजाम दिया जा रहा है, ताकि भारत 'उत्पीड़ित हिंदुओं की स्वाभाविक जगह' बन सके.

छिटपुट उदाहरण यह बताने के लिए काफी हैं कि हुकूमत किस दिशा में बढ़ रही है. याद रहे कि नागरिकता संशोधन बिल, 2016 के तहत मुसलमानों को साफ तौर पर बाहर रखा गया है तथा उसमें सिर्फ मुस्लिम बहुल देशों के धार्मिक अल्पसंख्यकों का उल्लेख है. यह बात इस सच्चाई की भी अनदेखी करती है कि पड़ोसी मुस्लिम बहुल मुल्कों में शियाओं, अहमदिया आदि समुदायों का भी उत्पीड़न होता है, जबकि वह भी इस्लाम को मानते हैं.

अगर हम भाजपा की अपनी यात्रा को देखें तो पता चलता है कि किस सुनियोजित तरीके से ये लोग इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं. याद कर सकते हैं कि जब अटल बिहारी वाजपेयी भारत के प्रधानमंत्री थे, तो उन्होंने संविधान समीक्षा के नाम पर तत्काल एक आयोग का गठन किया था. जस्टिस वेंकटचलैया आयोग ने अपनी रिपोर्ट भी सरकार को सौंपी थी. भाजपा की अगुआई वाली तत्कालीन राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार के पास चूंकि उस वक्त पूर्ण बहुमत नहीं था, इसलिए संविधान की समीक्षा के प्रस्तावों को सदन में रखने का साहस वह नहीं जुटा सके. उन्हीं दिनों यह बात भी रेखांकित की गयी थी कि उसके पहले सम्पन्न तीन चुनावों में भाजपा ने भारतीय संविधान की समीक्षा का एजेंडा चुनावी घोषणापत्र में बाकायदा जोड़ा था.

संविधान को लगातार इस तरह खारिज करते रहना या उसे प्रश्नांकित करते रहना (जिसने न केवल मनुस्मृति द्वारा प्रस्तावित सदियों से चली आ रही आचार संहिता को चुनौती दी थी और व्यक्ति तथा उसकी आजादी

एवं स्वायत्तता को केंद्र में स्थापित करने की बात कही थी) एक तरह से 21 वीं सदी की दूसरी दहाई में मनुस्मृति के प्रति संघ परिवार के खेमे में अभी भी व्याप्त जबरदस्त सम्मोहन को उजागर करता है.

यह बात इतिहास में भी दर्ज है कि मनुस्मृति के प्रति इसी सम्मोहन के चलते ही आजादी के वक्त जब नवस्वाधीन मुल्क के कर्णधार देश के लिए नया संविधान बनाने की प्रक्रिया में मुब्तिला थे, संघ के तत्कालीन सुप्रीमो गोलवलकर ने बाकायदा आजाद भारत के नए संविधान के लिए मनुस्मृति को ही प्रस्तावित किया था. (आर्गनाइजर, 30 नवंबर, 1949, पेज 3) संघ के मुखपत्र में यह शिकायत की गई थी कि हमारे संविधान में प्राचीन भारत के विलक्षण संवैधानिक विकास का कोई उल्लेख नहीं है.

इतना ही नहीं, उन दिनों जब डॉ आंबेडकर ने हिंदू कोड बिल के माध्यम से हिंदू स्त्रियों को पहली दफा संपत्ति और तलाक के मामले में अधिकार दिलाने की बात की थी, तब कांग्रेस के अंदर के रूढ़िवादी धड़े से लेकर हिंदूवादी संगठनों ने उनकी मुखालफत की थी, उसे हिंदू संस्कृति पर हमला बताते हुए उनके घर तक जुलूस निकाले गए थे. उन दिनों स्वामी करपात्री महाराज जैसे तमाम साधु संतों ने भी (जो मनु के विधान पर चलने के हिमायती थे) आंबेडकर का जबरदस्त विरोध किया था.

गोलवलकर ने उन्हीं दिनों लिखा था कि 'जनता को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए तथा इस संतोष में भी नहीं रहना चाहिए कि हिंदू कोड बिल का खतरा समाप्त हो गया है. वह खतरा अभी ज्यों का त्यों बना हुआ है, जो पिछले द्वार से उनके जीवन में प्रवेश कर उनकी जीवन की शक्ति को खा जाएगा. यह खतरा उस भयानक सर्प के सदृश है, जो अपने विषैले दांत से दंश करने के लिए अंधेरे में ताक लगाए बैठा हो. (श्री गुरूजी समग्रः खंड 6, पेज 64 , युगाब्द 5106)

याद रहे, इतिहास में पहली बार इस बिल के जरिए विधवा को और बेटी को बेटे के समान ही संपत्ति में अधिकार दिलाने, एक जालिम पति को तलाक देने का अधिकार पत्नी को दिलाने, दूसरी शादी करने से पति को रोकने, अलग-अलग जातियों के पुरुष और स्त्री को हिंदू कानून के अन्तर्गत विवाह करने और एक हिंदू जोड़े के लिए दूसरी जाति में जनमे बच्चे को गोद लेने आदि की बातें प्रस्तावित की गई थीं.

इस विरोध की अगुआई गोलवलकर के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने की थी, जिसने इसी मुद्दे पर अकेले दिल्ली में 79 सभाओं-रैलियों का आयोजन किया था, जिनमें 'हिंदू संस्कृति और परम्परा पर आघात करने के लिए' नेहरू और आंबेडकर के पुतले जलाए गए थे. (देखें, रामचंद्र गुहा, द हिंदू, 18 जुलाई 2004)

यह वही गोलवलकर थे, जिन्होंने कभी भी अनुसूचित जाति और जनजातियों के कल्याण एवम सशक्तिकरण हेतु नवस्वाधीन मुल्क के कर्णधारों ने जो विशेष अवसर प्रदान करने की जो योजना बनायीं, उसका कभी भी तहेदिल से समर्थन नहीं किया. आरक्षण के बारे में उनका कहना था कि यह हिंदुओं की सामाजिक एकता पर कुठाराघात है और इससे आपस में सद्भाव पर टिके सदियों पुराने रिश्ते तार-तार होंगे. इस बात से इनकार करते हुए कि निम्न जातियों की दुर्दशा के लिए हिंदू समाज व्यवस्था जिम्मेदार रही है, उन्होंने दावा किया कि उनके लिए संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करने से आपसी दुर्भावना बढ़ने का खतरा है. (गोलवलकर, बंच आफ थॉट्स, पेज 363, बंगलौरः साहित्य सिन्धु, 1996)

हालांकि इधर बीच गंगा-जमुना से काफी सारा पानी गुजर चुका है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि मनुस्मृति को लेकर अपने रूख में हिंदुत्व ब्रिगेड की तरफ से कोई पुनर्विचार हो रहा है. फर्क महज इतना ही आया है कि भारतीय संविधान की उनकी आलोचना (जिसने डॉ आंबेडकर के शब्दों में कहा जाए तो 'मनु के दिनों को खतम किया है') अधिक संश्लिष्ट हुई है.

हालांकि कई बार ऐसे मौके भी आते हैं, जब यह आलोचना बहुत दबी नही रह पाती और बातें खुल कर सामने आती हैं. विश्व हिंदू परिषद के नेता गिरिराज किशोर, जो संघ के प्रचारक थे, उनका अक्टूबर 2002 का एक वक्तव्य बहुत विवादास्पद हुआ था, जिसमें उन्होंने एक मरी हुई गाय की चमड़ी उतारने के 'अपराध' में झज्जर में भीड़ द्वारा की गयी पांच दलितों की हत्या को यह कह कर औचित्य प्रदान किया था कि 'हमारे पुराणों में गाय का जीवन मनुष्य से अधिक मूल्यवान समझा जाता है.'

मध्यप्रदेश की मुख्यमंत्री के तौर पर अपने कार्यकाल में उन दिनों भारतीय जनता पार्टी की नेत्री उमा भारती ने गोहत्या के खिलाफ अध्यादेश जारी करते हुए मनुस्मृति की भी हिमायत की थी. वक्तव्य में कहा गया था कि 'मनुस्मृति में गाय के हत्यारे को नरभक्षी कहा गया है और उसके लिए सख्त सजा का प्रावधान है.'

चर्चित राजनीतिविद शमसुल इस्लाम ने इस सिलसिले में लिखा था कि 'आजाद भारत के कानूनी इतिहास में यह पहला मौका था, जब एक कानून को इस आधार पर उचित ठहराया गया था कि वह मनुस्मृति के अनुकूल है.' ('द रिटर्न ऑफ मनु, द मिल्ली गैजेट, 16-29 फरवरी 2005).

संघ-भाजपा के मनुस्मृति सम्मोहन का एक प्रमाण जयपुर की उच्च अदालत के प्रांगण में भाजपा के नेता भैरोसिंह शेखावत के मुख्यमंत्रित्व काल में नब्बे के दशक के पूर्वार्द्ध में बिठायी गयी मनु की मूर्ति के रूप में मौजूद है. इस तरह देखें तो जयपुर हिन्दोस्तान का एकमात्र शहर है, जहां मनु महाराज हाईकोर्ट के प्रांगण में विराजमान हैं और संविधान निर्माता आंबेडकर की मूर्ति प्रांगण के बाहर कहीं कोने में स्थित है. इसके महज तीन सप्ताह पहले इसी जयपुर में एक विशाल कार्यक्रम हुआ था, जिसके मुख्य अतिथि के तौर पर संघ के अग्रणियों में शुमार इंद्रेश कुमार को मुख्य अतिथि के तौर पर बुलाया गया था, जिसमें मनुस्मृति का खूब गुणगान किया गया था.

- द वायर

तिल-तिल कर मरता उदार लोकतंत्र

❑ पी. चिदम्बरम

भारत के संविधान में एक प्रस्तावना है। बहुत सारे लोग इसकी प्रस्तावना को नहीं पढ़ते और न इसकी महत्ता को समझते हैं। यहां तक कि 'मौलिक अधिकार', 'अनुच्छेद 32' या 'आपातकाल' जैसे चुनिंदा प्रावधानों से वाकिफ लोग भी इस प्रस्तावना के शब्दों से अनजान हो सकते हैं।

जिस दिन संविधान सभा ने इसे स्वीकार किया था, प्रस्तावना में कहा गया था कि 'हम, भारत के लोग, सत्यनिष्ठापूर्वक भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए कृतसंकल्प है'। (जनवरी 1977 में राष्ट्र को और परिभाषित करने के लिए इसमें 'समाजवादी' और 'पंथनिरपेक्ष' शब्द जोड़े गये।) इसके बाद प्रस्तावना में यह भी कहा गया कि हम 'इसके सभी नागरिकों को न्याय, आजादी, समानता सुरक्षा के लिए और उन सबके बीच भाईचारे को बढ़ावा देने का संकल्प करते हैं।' ये वे शब्द हैं, जो यह परिभाषित करते हैं कि एक राष्ट्र के रूप में हम क्या हैं और भारतीय गणतंत्र जो होगा, वह उदार लोकतंत्र होगा।

ये शब्द हमेशा के लिए : सन् 1789 की फ्रांस की क्रांति के दौरान ये शब्द निकले थे - स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा या मृत्यु। फ्रांसीसी गणतंत्र और फ्रांस के लोगों के लिए हमेशा बने रहने वाले इन शब्दों को फ्रांस के लोगों और उन सबको, जो इसकी सीमाओं के भीतर रहने के इच्छुक हैं, को याद दिलाने के लिए कुछ देश राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों की आलोचना कर रहे हैं। एक इस्लामी आतंकी के हाथों सैमुअल पैटी नाम के शिक्षक की हत्या के बाद मैक्रों ने कहा - 'शांति के लिए हम सभी मतभेदों को स्वीकार करते हैं। हम नफरत फैलाने वाले भाषण बर्दाश्त नहीं करेंगे और उचित बहस का समर्थन करते हैं। हम इसे जारी रखेंगे। हम हमेशा मानवीय गरिमा और सार्वभौमिक मूल्यों को बनाये रखेंगे।'

कई देशों ने किसी न किसी रूप में इन तीन शब्दों को अपने संविधान में शामिल किया है। वे उदार लोकतंत्र होने का दावा करते हैं, जैसे भारत करता है। हालांकि लगातार भारत सहित कई देशों में ऐसे दावे खोखले होते जा रहे हैं। कई देश तो लोकतंत्र की पहली ही परीक्षा में नाकाम हो गये हैं।

अंधेरे की ओर : हाल में टाइम पत्रिका के अंक में दुनिया के सौ सबसे प्रभावशाली लोगों की सूची आयी है। छह राष्ट्र/सरकार प्रमुख मैंने गिने - नरेन्द्र मोदी, शी जिनपिंग, एंजेला मर्केल, जायर बोलसोनारो (ब्राजील), डोनाल्ड ट्रंप और साइ इंग-वेन (ताइवान)। छह में से कोई भी यह दावा नहीं करेगा कि वे लोग लोकतंत्रों का नेतृत्व कर रहे हैं। वास्तव में मोदी और ट्रंप चुनावी लोकतंत्रों के नेता हैं, लेकिन फिर भी वे 'उदार' होने के ठप्पे को खारिज करेंगे। सिर्फ मर्केल और साइ ही सही मायनों में उदार लोकतंत्र का नेतृत्व कर रही हैं। अगर आप कुछ और बड़े तथा ताकतवर देशों के राष्ट्र प्रमुखों को इसमें जोड़ लें तो और बदतर तस्वीर मिलेगी। मध्य एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और खुद हमारे पड़ोस में तानाशाही और चुनावी लोकतंत्रों के कई उदाहरण मिल जायेंगे, लेकिन सही मायनों में उदार लोकतंत्र नहीं मिलेगा।

टाइम ने मोदी के बारे में कहा था - "... दलाई लामा ने सद्भाव और स्थायित्व के उदाहरण के तौर पर (भारत की) प्रशंसा की है। नरेन्द्र मोदी ने इन सबको लेकर संदेह पैदा कर दिया ... उनकी पार्टी ने न सिर्फ उत्कृष्टता, बल्कि बहुलतावाद को खत्म कर दिया... महामारी का संकटकाल असहमति को कुचलने का बहाना बन गया। और दुनिया का सबसे मजबूत लोकतंत्र और अंधेरे में चला गया।'

दूसरे देश भी ऐसे अंधेरे में जाने से बचने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। जस्टिस रुथ बैडर गिन्सबर्ग के निधन के बाद राष्ट्रपति ट्रंप ने एमी कोने बैरेट को अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट का जज नामित करने में जरा भी वक्त बर्बाद नहीं किया और तीस दिन के जरा से वक्त में ही अप्रत्याशित रूप से नामांकन की प्रक्रिया को पूरा कर डाला। उदारवादी अमेरिका, खासतौर से महिलाएं, समझ गयीं कि बड़े उदारवादी हासिल, जैसे स्कूलों का एकीकरण, गर्भपात का अधिकार, वहन योग्य देखभाल कानून और बिना भेदभाव वाले आव्रजन कानूनों को पलटा जा सकता है।

हम कौन हैं? : लोकतंत्र और उदार देश समान नहीं होते हैं। लोकतंत्र बहुत छोटे से वक्त में ही अनुदारवादी लोकतंत्र में तब्दील हो सकता है, जैसा कि भारत में हो रहा है। लाखों लोगों की नागरिकता संदेह में पड़ गयी है, खुलकर बोलने की आजादी को कम कर दिया गया है, मीडिया को कब्जे में कर लिया गया है, प्रदर्शनों पर पाबंदी लगा दी गयी है या काफी हद तक प्रतिबंधित कर दिया गया है, दलबदल को बढ़ावा दिया जाता है, राज्य एक धर्म या एक भाषा को संरक्षण देता है, संस्कृति के रूप में बहुसंख्यकवाद को खत्म कर दिया गया है, अल्पसंख्यक और भेदभाव वाले समुदाय खौफ में रह रहे हैं, पुलिस अपने आकाओं की सुनती है न कि कानून की, सेना राजनीतिक मामलों पर बोलती है, कर और कानून प्रवर्तन एजेंसियां दमन का हथियार बन गयी हैं, अदालतें कमजोर हैं, संस्थाओं को या तो हथिया लिया गया है या उन्हें शक्तिहीन कर दिया गया है और कानून का शासन खत्म हो गया है। दुखद तो यह है कि जो हो रहा है, उसे कुछ ही देख पा रहे हैं और इनमें से कुछ जो देख रहे हैं, वे चुप्पी साधे हुए हैं।

संसद में जब बिना किसी वोट के कानून पास हो रहे हों, जब राजनीतिक नेताओं को बिना आरोपों के कई-कई महीने जेल में ठूंस दिया जा रहा हो, जब लेखकों, कवियों, प्रोफेसरों, छात्रों और सामाजिक कार्यकर्ताओं पर राष्ट्रद्रोह के मुकदमे थोपे जा रहे हों, दिनदहाड़े सैकड़ों साल पुरानी मस्जिद को ढहा दिये जाने के मामले में कोई दोषी करार न दिया जाये, बलात्कार और उसके बाद नृशंस हत्या की शिकार लड़की के मृत्यु पूर्व बयानों के बावजूद एफआईआर दर्ज न की जाये और कोई गिरफ्तारी न हो, जब पुलिस की शब्दावली में मुठभेड़ शब्द घुस आया हो, जब नाम के राज्यपाल निर्वाचित सरकारों के लिए रोड़े अटकाने लगें और जब अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्थानों को बिना मुखिया या बड़ी संख्या में कर्मचारियों के खाली पदों के साथ छोड़ दिया जाये तो देश एक कदम और अंधेरे में चला जाता है।

पिछले साल नवंबर में क्राइस्टचर्च की दो मस्जिदों में एक बंदूकधारी ने इक्यावन लोगों की हत्या कर दी थी और दर्जनों लोगों को घायल कर दिया था। न्यूजीलैंड की प्रधानमंत्री जेसिंदा आर्डर्न ने तब कहा था - वे हमारे हैं। जिस व्यक्ति ने हमारे खिलाफ यह हिंसा की है, वह हमारा नहीं है।

मैक्रों और आर्डर्न उन कुछ नेताओं में से हैं, जो उस जुबान में बोलते हैं, जिसे हम सुनना चाहते हैं। जिस तरह हम उदार लोकतंत्र को मरता देख रहे हैं, तो हमें अपने आपसे पूछना चाहिए कि 'हम कौन हैं?' ❑

नहीं थम रहा राजनीति में अपराधियों के दाखिले का सिलसिला

❑ नित्यानंद गयेन

कहा जाता है कि अपराधियों की आखिरी शरणस्थली राष्ट्रवाद होता है, लेकिन भारत में वह सीढ़ी राजनीति से होकर गुजरती है। देश के कई सूबों में जब चुनावी माहौल गरम है, तो इन अपराधियों के भी पौ बारह हो गए हैं। इसका नतीजा यह है कि जिन्हें जेल के सींखचों के पीछे होना चाहिए, वे अब विधानसभा और संसद में जाने का न केवल ख्वाब देख रहे हैं, बल्कि उसको पूरा करने के लिए चुनाव मैदान में भी कूद पड़े हैं।

राजनीति के अपराधीकरण का सवाल लगातार उठता रहा है और इस मसले पर देश में काफी बहस भी हुई है और उसी का नतीजा है कि इस पर कानून भी बना है, जिसके तहत तीन साल से ज्यादा सजायाफ्ता कोई भी शख्स चुनाव नहीं लड़ सकता है। माना जा रहा था कि इस प्रावधान के बाद राजनीति के अपराधीकरण की प्रक्रिया रुक जाएगी। लेकिन जमीनी हालात बिल्कुल अलग हैं। न तो अपराधियों ने राजनीति छोड़ी और न ही उन पर इन कानूनों ने कोई लगाम कसी। नतीजा यह है कि अभी भी भारी तादाद में अपराधी राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं और चुनावों में जीत के जरिये विधानसभा और संसद की शोभा बढ़ा रहे हैं।

दरसअल देश की राजनैतिक और चुनावी व्यवस्था दलगत हिसाब से चलती है। यानी राजनीति और चुनाव के केंद्र में पार्टियां होती हैं और अपनी नीतियों, योजनाओं, वादों और इरादों के आधार पर वे सत्ता में आती-जाती हैं। ऐसे में नेता और उनकी व्यक्तिगत छवि गौड़ हो जाती है। इसी चीज का फायदा दागी छवि के नेता उठाते हैं और पैसे तथा ताकत के बल पर राजनीति और चुनाव को अपनी जेब में कर लेते हैं। देश में होने वाले मौजूदा चुनावों में भी इसी तरह के लोगों का बोलबाला है। मध्य प्रदेश में यह बात उस समय खुलकर सामने आ गयी, जब इस मामले से जुड़ी एक एजेंसी ने उसके आंकड़े पेश कर दिए।

मध्यप्रदेश में 28 सीटों पर हुए उपचुनाव में सभी दलों ने खुलकर आपराधिक छवि वाले लोगों को टिकट दिया है। कांग्रेस और बीजेपी के साथ-साथ समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी के अलावा 178 निर्दलीय उम्मीदवार इस बार मैदान में थे।

इस बार मध्य प्रदेश उपचुनाव में किस्मत आजमा रहे कुल 355 उम्मीदवारों में से 63 उम्मीदवारों (18 प्रतिशत) ने चुनावी हलफनामे में बताया है कि उनके खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) की रिपोर्ट में यह जानकारी दी गई है। रिपोर्ट के अनुसार 11 प्रतिशत अथवा 39 उम्मीदवारों ने बताया है कि उनके खिलाफ संगीन आपराधिक मामले दर्ज हैं। संगीन आपराधिक मामले गैर जमानती होते हैं। इनमें पांच से लेकर कई सालों तक के कारावास की सजा होती है।

एडीआर ने कहा कि प्रमुख राजनीतिक दलों की बात करें तो कांग्रेस उम्मीदवारों की दी हुई जानकारी का विश्लेषण करने पर पता चला कि उसके 28 में 14 (50 प्रतिशत) उम्मीदवारों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं, जबकि भाजपा के 28 में से 12 उम्मीदवारों (करीब 43 प्रतिशत) ने घोषित किया है कि उनके खिलाफ ऐसे मामले दर्ज हैं। बसपा के 28 में आठ, सपा के 14 में से चार और 178 निर्दलीय उम्मीदवारों में से 16 ने अपने हलफनामों में बताया है कि उनके खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं।

सुप्रीम कोर्ट ने बीते फरवरी महीने में तमाम राजनीतिक दलों को निर्देश दिया था कि सभी दल अपनी वेबसाइट पर आपराधिक छवि वाले उम्मीदवारों की आपराधिक रिकॉर्ड के साथ सूची अपलोड करें। साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे उम्मीदवारों को टिकट दिए जाने का कारण बताने का भी निर्देश दिया था।

रिपोर्ट के अनुसार, 355 में से 80 यानी 23 प्रतिशत उम्मीदवार करोड़पति हैं, जिनमें बीजेपी के 23 और कांग्रेस के 22 उम्मीदवार हैं। वहीं, बीएसपी के 28 में से 23, समाजवादी पार्टी के 14 में से 2 और 178 निर्दलीय उम्मीदवारों में से 14 लोग करोड़पति हैं। गुजरात में भी आठ विधानसभा सीटों पर कड़ी सुरक्षा के बीच उपचुनाव के लिए मतदान हुआ। यहां भी 18 फीसदी उम्मीदवारों के खिलाफ आपराधिक मामले हैं।

बिहार पहला राज्य हैं, जहाँ कोरोना काल में विधानसभा चुनाव हुए। बिहार विधानसभा चुनाव के तीसरे चरण में चुनाव लड़ रहे 1,195 उम्मीदवारों में से 31 प्रतिशत के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। रिपोर्ट के अनुसार लगभग 282 या 24 प्रतिशत ने अपने खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले होने की घोषणा की है। गंभीर आपराधिक मामले गैर-जमानती अपराध हैं, जिनमें पांच साल से अधिक की कैद हो सकती है। रिपोर्ट के अनुसार इनमें से 361 यानी 30 प्रतिशत उम्मीदवारों ने अपनी वित्तीय संपत्ति करोड़ों रुपये की बताई है।

रिपोर्ट के अनुसार राजद के 44 उम्मीदवारों में से 32 (73%) ने अपने खिलाफ आपराधिक मामले घोषित किए हैं और उनमें से 22 (50%) ने अपने हलफनामों में खुद के खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले होने की घोषणा की है। भाजपा के 34 उम्मीदवारों में से लगभग 26 (76%) ने अपने खिलाफ आपराधिक मामले घोषित किए हैं और 22 (65%) ने अपने हलफनामों में खुद के खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले होने की घोषणा की है। वहीं, कांग्रेस के 25 उम्मीदवारों में से 19 (76%) ने अपने खिलाफ आपराधिक मामले घोषित किए हैं और 14 (56%) ने अपने हलफनामों में खुद के खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले होने की घोषणा की है।

एलजेपी के 42 उम्मीदवारों में से लगभग 18 (43%), जद (यू) से 37 उम्मीदवारों में से 21 (57%) और बसपा से 19 उम्मीदवारों में से पांच (26%) ने अपने हलफनामों में खुद के खिलाफ आपराधिक मामले होने की घोषणा की है। एलजेपी के 42 उम्मीदवारों में से ग्यारह (26%), जेडी (यू) के 37 उम्मीदवारों में से 11 (30%) और बसपा के 19 उम्मीदवारों में से 4 (21%) ने अपने हलफनामों में खुद के खिलाफ गंभीर आपराधिक मामलों की घोषणा की है।

बिहार विधानसभा चुनाव में शामिल सभी बड़ी पार्टियों ने 37 से 70 प्रतिशत तक ऐसे उम्मीदवारों को टिकट दिये हैं, जिन्होंने अपने खिलाफ आपराधिक मामले घोषित किये हैं। इन रिपोर्टों से साफ़ पता चलता है कि तमाम दलों ने सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों को दरकिनार कर आपराधिक छवि के लोगों को चुनावी मैदान में उतारा है। ❑

भूख का जटिल जाल

❑ आशुतोष राय

आर्थिक और मानव क्षमताओं के विकास के उद्देश्यों और जरूरतों को लेकर अनेक विचार पिछले चार दशकों में दिखायी पड़े हैं। अधिकतर पूंजीवादी अर्थशास्त्री आर्थिक विकास के लिए समृद्धि को सबसे महत्त्वपूर्ण कारक मानते हैं। समाजवादी झुकाव रखने वाले अर्थशास्त्री मानव क्षमताओं के विकासद्ध जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य आदि शामिल हैं, पर जोर देते हैं। इस दृष्टि से अगर भारत में आर्थिक विकास की जांच की जाय तो भारी अंतर्विरोध मिलते हैं। पिछले तीन दशक में खासकर 91 के बाद से ही भारत ने ऊंची विकास दरें हासिल की हैं। पिछले दो दशक में तो 6 से 7 प्रतिशत के औसत से विकास दर हासिल की है, जो केवल चीन की विकास दर से कुछ कम रहा है। यह ऊंची विकास दर और आर्थिक समृद्धि उदारवादी नीतियों की बदौलत निवेश में बढ़ोत्तरी के कारण अस्थाई रोजगार की स्थिति में सुधार होने, नई तकनीकों के इस्तेमाल और बाजार के स्वरूप में आमूल परिवर्तन की वजह से प्राप्त हुई। इसके चलते ही भारत 20 करोड़ से अधिक आबादी को अत्यंत गरीबी से बाहर निकालने में सफल हो पाया है। अस्थाई और असमान विकास की इस दौड़ में मानव क्षमताओं के विकास की भारी अनदेखी हुई और शिक्षा, स्वास्थ्य, कुपोषण, भुखमरी जैसी अत्यंत गंभीर समस्याओं को नजरअंदाज करते हुए बड़े शहरों में अधिक से अधिक अवस्थापनाओं के विकास पर जोर दिया गया। नतीजतन आज भारत इस स्थिति में है कि 3 अरब की अर्थव्यवस्था होने के बावजूद यहां 40 करोड़ आबादी गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर करने को अभिशप्त है। इसमें 8 करोड़ से अधिक आबादी भुखमरी की कगार पर है। आईएमएफ की ताजा रिपोर्ट, जिसमें कोरोना संकट का देश के आर्थिक हालात पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है, में कहा गया है कि भारत में क्रॉनिक पॉवर्टी की संख्या में 50% की वृद्धि हुई है। कोरोना संकट के दौरान 4 करोड़ लोग भुखमरी की मुहाने की ओर जा चुके थे। जो संख्या पहले 8 करोड़ थी, वह केवल छः महीने में बढ़कर 12 करोड़ हो गयी है। पिछले दशकों में जो आबादी गरीबी रेखा से बाहर या बिल्कुल करीब अतिसंवेदनशील स्थितियों में गुजर-बसर कर रही थी, वह पुनः गरीबी के कुचक्र में प्रवेश कर चुकी है।

भूख, कुपोषण और गरीबी से होने वाली मौतें केवल सरकार नहीं, समाज के लिए भी शर्म का विषय हैं। ऐसा नहीं है कि भूख और बदहाली के हालात आज ही पैदा हुए हैं। इससे हमारी जंग बहुत पुरानी है। अपनी पुस्तक 'ऐन अनसर्टेन ग्लोरी' में अमर्त्यसेन और ज्यां द्रेज ने लिखा है कि औपनिवेशिक काल में भारत की गरीबी जो शायद इस देश की सर्वज्ञात बात थी, इतनी थी कि यूरोप और अमेरिका में माता-पिता अपने बच्चों को हिदायत देते थे कि भूखे मर रहे भारतीयों के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी के खातिर वे अपने प्लेट में जूठन न छोड़ें। देश में कुपोषण और स्वास्थ्य के हालात को बताते हुए अर्थशास्त्री एंगस डीटन ने अपनी पुस्तक 'द ग्रेट स्केप हेल्थ वेल्थ एंड द ओरिजिंस ऑफ इनइक्वालिटी' में कहा है कि यह संभव है कि सदी के मध्य के आसपास जन्मे भारतीयों का बचपन उतना ही अभावग्रस्त रहा हो, जितना इतिहास के नवपाषाण काल और उससे भी पहले आखेटकों के काल में बड़े समूहों के बच्चों का था। ये उद्धरण बताते हैं कि आजाद भारत के सामने भूख ही सबसे बड़ी चुनौती के तौर पर खड़ी थी, जिसे आजादी के बाद के 40 सालों के सतत लेकिन सुस्त आर्थिक विकास और 1990 के बाद के तीव्र आर्थिक विकास के दौर में खत्म करने की कई कोशिशें हुई हैं। इसके बावजूद समस्या आज भी गहरी और जटिल बनी हुई है।

हाल ही में ग्लोबल हंगर रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ष वैश्विक भूख सूचकांक में भारत कुल 107 देशों की सूची में 94वें स्थान पर रहा है। पर सही आंकलन के लिए कुछ सही बातों को जानना जरूरी है। पहला, इस वर्ष जारी किये गये आंकड़ों में कोरोना संकट के प्रभाव को सम्मिलित नहीं किया गया है। आंकड़ों में 2019 तक का डाटा ही इस्तेमाल किया गया है। दूसरा, इन आंकड़ों में जिन 107 देशों को शामिल किया गया है, उनमें एशिया, अफ्रीका और साउथ अमेरिका के गरीब देश ही मुख्यतः शामिल हैं, जबकि यूरोप और उत्तरी अमेरिका आदि के समृद्ध देश इस सूची में नहीं हैं। तीसरा, इस वर्ष भारत को सूचकांक में 27.2 अंक प्राप्त हुए हैं। जब इसकी पूर्ववर्ती आंकड़ों से तुलना करेंगे तो पायेंगे कि वर्ष 2000 में भारत को 38 अंक मिले थे, जबकि 2012 में 29 अंक मिले। इससे पता चलता है कि पिछले दशक के सूचकांक में 9 अंकों की कमी हुई थी जबकि इस दशक में यह कमी मात्र 2 अंकों की हुई है, जो इस दशक में भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के संचालन के प्रति गंभीर गैरजिम्मेदारियों को दर्शाती है। यह स्वास्थ्य सेवाओं पर किये जाने वाले सार्वजनिक व्यय में हुई कटौतियों का सीधा परिणाम है। अगर अन्य देशों की तुलना में देखा जाय तो अत्यंत गरीब अफ्रीकी देशों और बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान आदि पड़ोसियों ने भी भारत को पीछे छोड़ दिया है, जबकि इसमें से अधिकतर देश प्रति व्यक्ति आय के संदर्भ में भारत से कहीं बहुत पीछे हैं।

हालांकि देश में कई राज्य ऐसे भी हैं, जिन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र में शिक्षा और स्वास्थ्य पर बेहतर ध्यान देकर बाकी राज्यों से अलग पहचान बनायी है, जिनमें तमिलनाडु और केरल शामिल हैं, जिनकी तुलना चीन जैसे देशों से की जा सकती है। इसके विपरीत बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश जैसे राज्य अपनी भ्रष्ट और खस्ताहाल राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था के चलते भुखमरी और कुपोषण के जाल में उलझे हुए हैं। आंकड़े बताते हैं भूख और कुपोषण का संकट कोरोना के कारण और गहरा हुआ है। ऐसा नहीं है कि देश में इस समस्या से निजात पाने के लिए आर्थिक नीतियों और योजनाओं की कोई कमी रही है, पर इनके क्रियान्वयन के लिए जिस राजनीतिक इच्छाशक्ति और प्रशासनिक जवाबदेही की जरूरत है, उसका नितांत अभाव रहा है।

गरीबी के कारण भुखमरी और कुपोषण के खात्मे के कई सुझाव सामने हैं, जिनमें एक सीमा तक कारगर और सबसे नया सुझाव नोबेल पुरस्कार विजेता, अर्थशास्त्री अभिजीत बनर्जी और एस्थर डुफ्लो का है। उन्होंने अपनी किताब 'पूअर इकॉनामिक्स' में सुझाया है कि गरीब लोगों, उनके समूहों और उनके बर्ताव का प्रयोगात्मक अध्ययन करके उनकी जरूरतों के अनुरूप नीतियां बनाकर, डिलीवरी मैकनिज्म तैयार करके गरीबी को कुछ लंबे अंतराल में ही सही, पर दूर किया जा सकता है। इसके लिए अच्छी नीयत वाले राजनेताओं, अफसरों, एनजीओ, अकादमिक बुद्धिजीवियों और उद्यमियों को एक होकर काम करने की जरूरत है। मगर भारत में जहां राजनेता सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा पर खर्च को लगातार कम करते जा रहे हैं, ऐसे में अच्छी नीयत की उम्मीद के सहारे रहना, एक भ्रामक स्थिति में बने रहना है। गरीबी खासकर भूख और कुपोषण के खात्मे के लिए सबसे जरूरी शर्त है कि प्रशासनिक तंत्र में बदलाव किया जाय। ❑

प्रदेशों में सबसे सुशासित केरल और सबसे कुशासित उत्तर प्रदेश

❑ शैलेश

'जन मामलों का सूचकांक 2020' जारी हो गया है। इस सूचकांक के अनुसार बड़े राज्यों में से सबसे सुशासित राज्य केरल और सबसे कुशासित राज्य उत्तर प्रदेश है। इस सूची के बड़े राज्यों की श्रेणी में पहले स्थान पर केरल, दूसरे पर तमिलनाडु, तीसरे पर आंध्र प्रदेश, चौथे पर कर्नाटक और पांचवें पर छत्तीसगढ़ है, जबकि सबसे निचली पायदान पर उत्तर प्रदेश, उससे ऊपर उड़ीसा, बिहार, झारखंड और हरियाणा हैं। इस तरह से हम देखते हैं कि जहां दक्षिण के राज्य सर्वाधिक सुशासित हैं, वहीं उत्तर की गाय-पट्टी के राज्य सर्वाधिक कुशासित हैं।

इन आंकड़ों को 'जन मामलों का केंद्र' नामक एक गैर लाभकारी संगठन तैयार करता है। इस संगठन के अध्यक्ष 'इसरो' (भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन) के पूर्व अध्यक्ष के. कस्तूरीरंगन हैं। हर साल सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के पचास संकेतकों के आंकड़ों के आधार पर तीन बुनियादी पैमाने तैयार किए जाते हैं, ये हैं- न्यायसंगतता, वृद्धि और निरंतरता (इक्विटी, ग्रोथ और सस्टेनेबिलिटी)। यही पैमाने किसी राज्य के टिकाऊ विकास तथा उसके कामकाज और उसके प्रदर्शन को मापने और उसके सुशासन के स्तर के मूल्यांकन का आधार बनते हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि विकास के लिहाज से यह बात स्वयंसिद्ध है कि इन तीनों पायों- न्यायसंगतता, वृद्धि और निरंतरता में उचित तालमेल होना जरूरी है, अन्यथा इनमें से किसी भी एक के बिना शेष दोनों अपर्याप्त हैं।

यह रिपोर्ट तीन श्रेणियों में तैयार की जाती है। पहली श्रेणी में बड़े राज्यों को रखा जाता है, जिनकी आबादी 2 करोड़ से ज्यादा होती है। दूसरी श्रेणी में छोटे राज्यों और तीसरी श्रेणी में केंद्र शासित प्रदेशों के सुशासन का मूल्यांकन रहता है। इस बार छोटे राज्यों में सर्वाधिक सुशासित गोवा और उससे नीचे क्रमशः मेघालय, हिमाचल प्रदेश और सिक्किम हैं, जबकि सर्वाधिक कुशासित मणिपुर और उससे थोड़े-थोड़े बेहतर क्रमशः दिल्ली, उत्तराखंड और नगालैंड हैं। केंद्र शासित प्रदेशों में सर्वाधिक सुशासित चंडीगढ़ और सर्वाधिक कुशासित दादरा और नगर हवेली है। इन आंकड़ों को जारी करते समय डॉ. कस्तूरीरंगन ने कहा कि 'जन मामलों के सूचकांक 2020' द्वारा प्रस्तुत प्रमाण और अंतर्दृष्टि का महत्व तभी है, जब यह हमें ऐसे कदम उठाने को मजबूर करे जो उस आर्थिक और सामाजिक संक्रमण में प्रतिबिंबित हों, जिसके दौर से भारत आज गुजर रहा है।

1980 के दशक में प्रसिद्ध भारतीय जनसांख्यिकीविद आशीष बोस ने उत्तरी भारत के चार राज्यों का 'बीमारू राज्य' के रूप में नामकरण किया था। यह नामकरण इन राज्यों (बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश) के अंग्रेजी नामों के शुरुआती अक्षरों को मिलाकर किया गया था। बाद में उत्तर प्रदेश से उत्तराखंड, बिहार से झारखंड और मध्य प्रदेश से छत्तीसगढ़ निकले, लेकिन उत्तराखंड भी छोटे राज्यों की श्रेणी में कुशासित बना हुआ है और झारखंड अभी भी अपने मातृ राज्य बिहार की दशा से बाहर नहीं निकल पाया है, जबकि छत्तीसगढ़ सबसे सुशासित बड़े राज्यों में पांचवें पायदान पर है और बीमारू के ठप्पे से मुक्त हो चुका है। आखिर क्या कारण है कि 'गाय पट्टी' के इन राज्यों की नियति जस की तस बनी हुई है। आर्थिक विकास और स्वास्थ्य सेवाओं के सभी मापदंडों के मामले में दक्षिणी राज्यों की तुलना में इन राज्यों की दयनीय स्थिति किसी से छिपी नहीं है।

जनवरी, 2009 में तत्कालीन उप राष्ट्रपति हामिद अंसारी ने राज्यों की स्वास्थ्य सुविधाओं में भारी अंतर पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा था कि आप किस राज्य में पैदा हुए हैं, इसी से तय हो जाता है कि आप कितने साल जियेंगे। पैदा होने के समय जीवन प्रत्याशा उत्तर प्रदेश में 56 साल है, जबकि केरल में 74 साल है। ये 18 साल आपका राज्य आपसे छीन लेता है। हामिद अंसारी उस समय लखनऊ में छत्रपति शाहूजी महाराज मेडिकल कॉलेज के दीक्षांत समारोह में बोल रहे थे। उन्होंने बताया कि स्वास्थ्य मानकों की गिरावट ने गरीबों की जिंदगी को तबाह कर दिया है। केरल में 85 प्रतिशत महिलाओं की प्रसवपूर्व देखभाल होती है, जबकि यूपी में मात्र 11 प्रतिशत की, केरल में 96.6 प्रतिशत प्रसव अस्पतालों में होते हैं, जबकि यूपी में मात्र 11.3 प्रतिशत। उन्होंने उत्तर प्रदेश में महिलाओं में रक्ताल्पता तथा बाल टीकाकरण की दयनीय स्थिति के आंकड़े भी पेश किए, और जैसा कि हमेशा होता है, सत्ता प्रतिष्ठान से जुड़े तमाम लोगों को उनकी बातें बहुत चुभी थीं और बाद में उनकी काफी आलोचना की गई।

डॉ. कस्तूरीरंगन की टिप्पणी भी इसी तरफ इशारा करती है कि 'जन मामलों का सूचकांक 2020' के ये आंकड़े तो केवल हालात का बयान करते हैं, ये आंकड़े तब तक बेमानी हैं, जब तक योजना बनाने वाले और लागू करने वाले लोग इन आंकड़ों का इस्तेमाल करते हुए आवश्यक कदम उठाने और हर हाल में हालात को बदलने की प्रतिबद्धता के साथ जमीन पर ठोस परिणाम नहीं दिखाते हैं। लेकिन सच्चाई यही है कि हमारा राजनीतिक नेतृत्व जिस तरह से सत्ता को बरकरार रखने और उस पर अधिक से अधिक कब्जा बढ़ाते जाने के लिए हर तरह के हथकंडे इस्तेमाल करने में लगा हुआ है, अगर उस कोशिश का सौवां हिस्सा भी वह इन राज्यों में उद्योग-धंधे, कृषि तथा अन्य आर्थिक संरचनाओं को बढ़ाने तथा उन्नत करने, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के आधारभूत ढांचे के निर्माण और सुदृढ़ीकरण में खर्च करता तो इन राज्यों की तकदीर बदल जाती। लेकिन हो इसका उल्टा ही रहा है। वर्तमान सत्ता-कॉरपोरेट गठजोड़ जिस तरह से सभी जन सुविधाओं को खरीद-फरोख्त का माल बनाने में लगा हुआ है, उसके कारण ये सुविधाएं कमजोर वर्गों की पहुंच से दिनों दिन और दूर होती जा रही हैं।

बंटी हुई जनता को जीवन को बेहतर बनाने वाले मुद्दों से भटकाना आसान होता है। बंटी हुई जनता सत्ता को निरंकुश बनाने में मददगार होती है। अभी इन उत्तरी राज्यों में जनता की एकजुटता को बढ़ाने वाले आंदोलनों तथा अभियानों का बेहद अभाव है। आत्ममुग्ध और जनविमुख सत्ता की निश्चिंत निद्रा को ऐसे आंदोलन ही झिंझोड़ सकते हैं। 'जन मामलों का सूचकांक 2020' के आंकड़ों का महत्व तभी है, जबकि उत्तरी भारत के इन राज्यों को सुशासन की ओर बढ़ने के लिए यहां की जनता खुद ही मजबूर कर दे। **-जनचौक**

गतिविधियां एवं समाचार

बच्चों के बीच गांधी के जीवन प्रसंग

इस वर्ष बच्चों के साथ गांधी जयंती कैसे मनायी जाये? यह प्रश्न न सिर्फ हमारे सामने उपस्थित था, बल्कि शिक्षकों के सामने भी यह एक समस्या थी। चूंकि विद्यालय बंद हैं और बच्चे ऑनलाइन पढ़ाई कर रहे हैं।

इसका हल मुंबई सर्वोदय मंडल की बैठक में निकल गया, जो 'गांधी जयंती से जेपी जयंती' के कार्यक्रम के नियोजन के लिए बुलायी गयी थी। तय किया गया कि खुशी ट्रस्ट के साथ मिलकर 'गांधी कथा कथन प्रतियोगिता' का आयोजन किया जाय। खुशी ट्रस्ट के मंसूर व उज्ज्वला पटेल ने इसकी पूरी जिम्मेदारी उठायी।

इस प्रतियोगिता में विद्यार्थियों को गांधी कथा दी गयी और उनसे वीडियो बनवाकर मंगाये गये। इस प्रतियोगिता में कक्षा 4 से 10 तक के विद्यार्थियों ने भाग लिया। कुल 50 विद्यालयों के 184 विद्यार्थियों ने भाग लिया, जिसमें 128 लड़कियां और 56 लड़के थे। इन 36 वीडियो में से 33 मराठी और 3 हिन्दी भाषा के हैं।

प्रथम, द्वितीय, तृतीय पुरस्कार देना हमारा उद्देश्य नहीं था। हमारा उद्देश्य बच्चों तक गांधी को पहुंचाना था। वे गांधी, जिनको वे इतिहास की पुस्तकों में पढ़ते हैं। वे गांधी जो स्वतंत्रता सेनानी हैं। पर गांधी इससे भी आगे है। वे महात्मा क्यों हैं? वे राष्ट्रपिता क्यों हैं? वे कौन से जीवन मूल्य हैं, जो उन्हें काल से परे बना देते हैं? यह सिर्फ गांधी के जीवन को जानकर ही समझा जा सकता है। कोशिश यह थी कि इसी बहाने गांधी मूल्य घर-घर पहुंचे।

–जयंत दिवाण

गांधी जयंती से जेपी जयंती

लॉकडाउन की स्थिति में सोशल मीडिया की सहायता से गांधी जयंती से जेपी जयंती तक मुंबई सर्वोदय मंडल ने कार्यक्रमों का आयोजन किया। हर रोज एक वक्ता गांधीजी पर दस मिनट अपने विचार रखता। इस तरह दस दिनों में दस वक्ताओं ने गांधी पर अपने विचार हमारे सामने रखे। शृंखला की पहली कड़ी में डॉ. विवेक कोरडे का वक्तव्य था। गांधी विश्व मानव क्यों है? इस विषय पर डॉ. विवेक कारडे ने विवेचन किया। लेखक वक्ता चंद्रकांत वानखेड़े ने गांधी के धर्म पर भाष्य करते हुए कहा कि गांधी धर्म का 'अवकाश' पकड़े रखते हैं। वे एक ओर कहते हैं कि वे सनातनी हिन्दू हैं और दूसरी ओर कहते हैं कि उन्हें वेद-प्रमाण मान्य नहीं है। वे धर्म का आधार लेते हुए धर्म की बुराइयों का विरोध करते हैं। सर्व सेवा संघ प्रकाशन के संयोजक अरविन्द अंजुम के वक्तव्य का विषय था 'गांधी कैसे सोचते हैं!' गांधी इतिहास को कैसे देखते हैं। इस पर विवेचन करते हुए उन्होंने कहा कि गांधीजी ने समाज की कमजोरियों को पहचाना, जिन कमजोरियों के कारण देश गुलाम हुआ, उन्होंने उन कमजोरियों को दुरुस्त करने की कोशिश की। सर्वोदय कार्यकर्ता व किसानों के नेता अविनाश काकड़े ने कहा कि सत्य के लिए गांधीजी ने अपना जीवन समर्पित किया। लेखक व वक्ता डॉ. रवीन्द्र आर. पी. ने गांधीजी की विज्ञान दृष्टि पर बातें रखी। गांधीजी मानते थे कि विज्ञान में नैतिकता का अंतरभाव नहीं हो तो वह विनाशक बनता है। रमेश ओझा ने गांधीजी की निर्भयता, भयमुक्ति पर प्रकाश डाला। रजिया पटेल अल्पसंख्यकों की मुख्यतः औरतों की आवाज हैं। सामाजिक सौहार्द व लोकतंत्र पर बातें करते हुए उन्होंने कहा कि सामाजिक सौहार्द तभी होगा, जब विषमताएं नष्ट होंगी। लोकतंत्र की रक्षा जनता की एकजुटता से ही होगी। मोहन हीराबाई हीरालाल ने कहा कि ग्रामदान गांधी विचार का प्राणतत्व है। व्यक्तिगत मालकीयत का विसर्जन ग्रामदान का सार है। पत्रकार सरोज त्रिपाठी ने गांधी व पर्यावरण पर विवेचन किया। विवेचन की इस शृंखला की आखिरी कड़ी सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष जयंत दिवाण ने रखी। लॉकडाउन में बनी स्थिति का उन्होंने विश्लेषण किया। लॉकडाउन में लोगों की सोच की दिशा बदली है। उन्होंने कहा कि आज विश्व गांधी विचार की ओर बढ़ रहा है।

–जयंत दिवाण

जोधपुर में व्याख्यान माला

''महात्मा गांधी व्यक्ति नहीं विचार है। उनकी चेतना भारतीय जनमानस में समाई हुई है। गांधी उस प्रिज्म की तरह है, जो अनेक कोणों से अपनी आभा बिखेरता है। गांधी की संवादशीलता आज के खंडित होने जा रहे समाज के लिए आशा की किरण हैं। गांधी ने संवाद करते हुए कभी अपना आग्रह थोपा नहीं, बल्कि उन्होंने हमेशा सर्व स्वीकार्यता पर बल दिया।

उपरोक्त विचार राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के पूर्व कुलपति प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र की ओर से गांधी भवन, जोधपुर में आयोजित नेमिचंद्र जैन 'भावुक' स्मृति वर्चुअल व्याख्यानमाला में व्यक्त किये। अपने व्याख्यान में प्रो. त्रिपाठी ने कहा कि गांधीजी ने लोगों से बातचीत करने के लिए जो संवाद शैली विकसित की वह मर्म को छूने वाली थी। गांधी ने विकट स्थितियों में भी संवाद नहीं छोड़ा और मुश्किल विकल्पों का चुनाव करने में संकोच नहीं किया। गांधी, बुद्ध और महावीर के बाद सबसे बड़े संवाद पुरुष थे। वे संवाद के सभी माध्यम काम में लेते थे और गवर्नर जनरल से लेकर सामान्य मछुआरे और मजदूर से भी रचनात्मक और व्यापक संवाद कर लेते थे। प्रो. त्रिपाठी ने कहा कि महात्मा गांधी हमारे युग के सबसे निर्भय संवाद पुरुष थे। उनकी निष्कलुष चेतना के कारण विरोधी भी उनसे बातचीत करने के लिए तैयार हो जाते थे। अपनी मान्यता और सिद्धांतों से समझौता किये बिना गांधी ने संवादशीलता को कायम रखा और हमेशा सर्व स्वीकार्यता की तलाश की। उन्होंने कहा कि गांधी का दर्शन जीवनानुभूति से आता है, जिसके सिद्धांत और व्यवहार में कोई फर्क नहीं है। प्रो. त्रिपाठी ने कहा कि आज सारा विश्व गांधी की तरफ पलट-पलट कर देख रहा है। गांधी मनुष्य जाति की अंतिम आशा और संबल हैं। आज गांधी की छवि बिगाड़ने की कोशिश हो रही है, ऐसे में उनकी वास्तविक छवि लोगों को दिखाने की जरूरत है। गांधी ने देश के लोगों के जीवन को रूपांतरित कर दिया था। देश ने गांधी को व्यक्ति से विचार बनते देखा था, उस संपूर्ण कालखंड को समझकर ही हम गांधी को समझ सकते हैं।

कार्यक्रम में वरिष्ठ सर्वोदयी एवं अध्यक्षा आशा बोथरा, डॉ. ओमप्रकाश टाक, डॉ. अनुलता गहलोत, डॉ. पद्मजा शर्मा, काजी मोहम्मत तैय्यब अंसारी, धर्मेश रूटिया, धनराज जैन, महेन्द्र पूनिया, शांति चौहान, मनोहरसिंह चौहान, अशोक चौधरी, पल्लवी टाटिया, राजकुमार जैन, बादलराज सिंधवी, गौतम खण्डप्पा, अम्बालाल जेदिया, डॉ. संध्या शुक्ल, नितिन जैन, मुरलीधर वैष्णव, सुज्ञाननाथ मोदी, प्रो. सरोज कौशल, अनिल अनवर, डॉ. राजू सुनील चारण आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। प्रारंभ में नेमिचंद्र जैन 'भावुक' की प्रतिमा पर पुष्पांजलि अर्पित कर उनको याद किया गया।

–डॉ. भावेन्द्र शरद जैन

गांधी-परीक्षा

धुलिया जेल में गांधी जयंती के उपलक्ष्य में 134 व्यक्तियों ने गांधी परीक्षा दी, जिनमें कैदियों सहित अधिकारी भी थे। जालना के जे.ई.एस. कॉलेज में वाक-प्रतियोगिता रखी गयी। गांधी जयंती से जेपी जयंती के दरम्यान साठ हजार रुपयों के गांधी साहित्य की बिक्री हुई।

धुलिया के विनोद पगार 'रोजगार के पर्यायी प्रयोग' का अभ्यास करने के लिए साइकिल यात्रा कर रहे हैं। 27 अक्टूबर से धुलिया से यात्रा प्रारंभ हुई तथा 11 नवंबर को सेवाग्राम में समाप्त हुई।

-नफीसा

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

सर्वोदय दैनन्दिनी (डायरी) : 2021

आप जानते ही हैं कि विगत कई वर्षो से सर्व सेवा संघ प्रकाशन **'सर्वोदय दैनन्दिनी'** नाम से डायरी प्रकाशित करता आ रहा है। इस वर्ष वैश्विक महामारी **कोरोना के कारण** सर्वोदय दैनन्दिनी सीमित मात्रा में प्रकाशित की गयी है। डायरी हिन्दी व अंग्रेजी में आपूर्ति के लिए उपलब्ध है।

पिछले वर्षों की भांति **'सर्वोदय दैनन्दिनी'** डबल डिमाई साइज में छापी गयी है। कागज, छपाई, बाइंडिंग आदि की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि होने के कारण **सर्वोदय दैनन्दिनी : 2021** की कीमत **रुपये 200/-** है।

'सर्वोदय दैनन्दिनी :2021' के प्रत्येक पृष्ठ पर गांधीजी की ज्ञानवर्धक व जीवनोपयोगी सूक्तियां (हिन्दी व अंग्रेजी में) हैं। डायरी का आवरण पृष्ठ अत्यधिक आकर्षक, रंगीन व जिल्द बाइंडिंग तथा रोचक साज-सज्जा के साथ अच्छे कागज पर ऑफसेट द्वारा सुन्दर छपाई की गयी है।

डायरी विक्रेताओं एवं भेंट देने वाले शुभचिन्तकों, गांधीजनों व सर्वोदय विचार प्रेमी साथियों से अनुरोध है कि अग्रिम क्रयादेश शीघ्र भिजवाने की कृपा करें, ताकि हम समय से आपको डायरी की आपूर्ति कर सकें।

वैश्विक महामारी कोरोना के कारण इस वर्ष डायरी कम संख्या में ही छापी गयी है। अतः आप अपनी प्रति सुरक्षित कर लें, ऐसी अपेक्षा है।

आपूर्ति के नियम

1. 1 से 50 डायरी मंगाने पर 25% कमीशन देय होगा, ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने के खर्च का आधा एवं डाकखर्च ग्राहक को देना होगा।
2. 51 से 200 डायरी मंगाने पर 30% कमीशन देय होगा। ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने के खर्च का आधा एवं डाकखर्च ग्राहक को वहन करना पड़ेगा।
3. 201 से 300 डायरी एक साथ खरीद करने पर 35% कमीशन दिया जायेगा। ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने के खर्च का आधा एवं डाकखर्च ग्राहक को वहन करना पड़ेगा।
4. 301 से अधिक डायरी मंगवाने पर 40% कमीशन एवं स्टेशन पहुंच की सुविधा दी जायेगी। ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने का आधा खर्च ग्राहक को देना होगा।
5. बिकी हुई डायरी वापस नहीं ली जायेगी।
6. डायरी की बिक्री पूर्णतया नकद, बैंक के मार्फत होती है।
7. आर्डर भिजवाते समय अपना नाम/पता/मोबाइल नं.और निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम साफ-साफ लिखें।
8. डायरी का आर्डर भिजवाते समय 25% रकम अग्रिम अवश्य भिजवायें। डिमाण्ड-ड्राफ्ट 'सर्व सेवा संघ प्रकाशन' के नाम भेजें।
9. रेलगाड़ी की सुविधा नहीं होने पर ट्रांसपोर्ट से पार्सल भेजने के लिए प्रकाशन स्वतन्त्र होगा।

नोट : रेलवे के असुविधाजनक नये नियमों के कारण पार्सल ट्रांसपोर्ट से मंगाना बेहतर होगा।

समुचित अपेक्षा के साथ!

-अरविन्द अंजुम, संयोजक

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार